ॐ साँई श्री साँई जय जय साँई

चतुरंग (साहित्यिक किताब)

[एक लघु-उपन्यास]

लेखक

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

किताब महल

इलाहाबाद

बँगला उपन्यास माला

सम्पादक

श्रीकान्त व्यास

अनुवादक

कृष्णवल्लभ

प्रथम संस्करण, १९५७

प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद।

मुद्रक—निर्मल मुद्रणालय, ६९ ई, तुलाराम का बाग, इलाहाबाद।

ताऊजी

१

गाँव से कलकत्ते आकर मैं कालेज में भर्ती हो गया। तब शचीश बी० ए० में था। हम दोनों एक ही उम्र के रहे होंगे।

शचीश को देखने से ऐसा लगता था जैसे वह कोई ग्रह या नक्षत्र हो। उसकी आँखें सदा चमकती रहती थीं, लम्बी, पतली उँगलियाँ जैसे अग्नि-शिखा के समान लगती थीं, और देह का रंग जैसे रंग न होकर आभा हो। शचीश को देखते ही जैसे मैंने उसकी आत्मा को पहचान लिया, पल भर में ही मैं उसे चाहने लगा।

लेकिन आश्चर्य की बात तो यह थी कि शचीश के साथ जो लोग पढ़ते थे उनमें से बहुत से उससे द्वेष का भाव रखते थे। बात असल में यह है कि जो लोग आम औसत लोगों की तरह ही साधारण होते हैं, उनका उन औसत लोगों से बिना किसी कारण के कोई विरोध नहीं हुआ करता परन्तु जब मनुष्य के अन्तर का कान्तिमान सत्यपुरुष उसकी बाहरी स्थूलता को भेद कर प्रकाशित होता है, तो कुछ लोग तो प्राणपण से उसकी पूजा करते हैं और कुछ बिना किसी कारण के ही उसका अपमान करने लगते हैं।

हमारे छात्रावास के लड़कों ने यह जान लिया था कि मैं मन ही मन

शचीश की भक्ति किया करता हूँ। इस वजह से न मालूम क्यों हमेशा जैसे उनके आराम में बाधा पड़ा करती थी। इसलिए वे लोग मुझे सुना-सुना कर शचीश की निन्दा किया करते थे और इसमें वे कभी नहीं थकते थे। मैं भी जानता था कि आँख में जब किरकिरी पड़ जाती है तो उसे मलने से कसक और बढ़ जाती है, यानी बात जब कड़ी हो तो वहाँ जवाब न देना ही ठीक होता है। लेकिन एक दिन शचीश के चरित्र को लेकर उन लोगों ने कुछ ऐसी गन्दी बातें कहीं कि फिर मैं चुप नहीं रह सका।

और कठिनाई यह थी कि शचीश के साथ मेरी जान-पहचान नहीं थी। उधर विरोधी दल में कोई उसका पड़ोसी था, तो कोई किसी दूसरे सिलसिले में उससे सम्बन्धित था। जब सब लोग खूब जोश-फरोश के साथ यह कह चुके कि शचीश के चरित्र से सम्बन्धित अमुक बात सही है तो मैंने उससे भी अधिक जोश के साथ घोषित किया कि नहीं यह बात गलत है। मैं इसमें रत्ती भर भी विश्वास नहीं करता और इस पर सारे छात्रावास के लड़के नाराज हो गये और आस्तीनें चढ़ा कर मुझे बदतमीज कहने लगे।

उस रात बिछौने पर लेटे-लेटे मुझे रुलाई आ गई। दूसरे दिन शचीश क्लास के बीच के छुट्टी के समय में गोल तालाब के पास छाया में लेटा एक किताब पढ़ रहा था। बिना किसी जान-पहचान के ही मैं उसके पास जा बैठा और न जाने क्या-क्या बक गया। वह किताब बन्द करके एकटक कुछ देर तक मेरी ओर देखता रहा। जिन्होंने उसकी वे चमकती हुई आँखें नहीं देखीं, वे अनुमान भी नहीं कर सकेंगे कि उसकी नजर कैसी होती थी।

वह बोला, 'जो लोग निन्दा करते हैं, वह इसलिए कि उन्हें निन्दा प्रिय होती है, इसलिए नहीं कि उन्हें सत्य प्रिय होता है। और अगर यह बात सही है तो फिर किसी झूठी निन्दा को रोकने के लिए छटपटाने से क्या लाभ हो सकता है?'

मैंने कहा, 'तब भी देखिये न झूठ बोलने वाले को—'

शचीश बीच में ही रोक कर बोला, 'झूठ तो वे लोग नहीं कहते। हमारे मुहल्ले में एक तेली के लड़के को लकवा मार गया है, इसलिए उसके हाथ-पैर काँपते रहते हैं। जाड़े के दिनों में मैंने उसे एक कम्बल दे दिया था। उस दिन मेरा नौकर शिबू गुस्से में फड़फड़ाता हुआ आया और बोला, 'बाबू, उस लड़के को कँपनी-वपनी नहीं आती, सब बहानेबाजी है।' जो लोग एकबारगी ही हँस कर यह उड़ा देते हैं कि मुझमें भी थोड़ी बहुत भलाई हो सकती है, उनकी स्थिति ठीक शिबू जैसी है। वे लोग जो कुछ कहते हैं, उसमें वे सचमुच ही विश्वास करते हैं। मेरे भाग्य में एक कीमती कम्बल फालतू आ जुटा था, इसलिए शिबू के जैसे लोगों ने बिना किसी संशय के यह विश्वास कर लिया कि उस पर मेरा कोई अधिकार नहीं हो सकता। इस विषय में उन लोगों से कोई झगड़ा मोल लेते मुझे लज्जा आती है।'

इसका कोई उत्तर दिये बिना ही मैंने फिर से एक सवाल कर लिया, 'ये लोग कहते हैं कि आप नास्तिक हैं, तो क्या यह सही है?'

शचीश बोला, 'हाँ, सही है। मैं नास्तिक हूँ।'

मेरा सिर नीचा हो गया। छात्रावास के लड़कों से मैंने इसी बात पर झगड़ा किया था कि शचीश जैसे उज्ज्वल चरित्र का लड़का कभी नास्तिक नहीं हो सकता।

शचीश के बारे में मुझे शुरू से ही दो आघात लगे थे। एक तो यह कि उसे देखते ही मैंने यह तय कर लिया था कि वह ब्राह्मण का लड़का है। उसका चेहरा जैसे सफेद पत्थर पर खुदी हुई किसी देवमूर्ति की भाँति था। सुना था कि उसकी पारिवारिक उपाधि मल्लिक है। हमारे गाँव में मल्लिक कुल के ब्राह्मणों का एक घराना भी है। लेकिन बाद में मालूम हुआ कि शचीश बंगाल की गंधी जाति का लड़का है और हम लोगों का घराना निष्ठावान् कायस्थों का ठहरा। इसलिए जाति की

दृष्टि से मैं गंधियों से बहुत घृणा किया करता था और नास्तिक को तो नरहत्यारे, यहाँ तक कि गोहत्यारे से भी अधिक पापी मानता था।

मैं चुपचाप शचीश की ओर देखता रहा। देखा अब भी उसके मुख पर वही ज्योति है, जैसे भीतर पूजा का दीपक जल रहा हो।

कभी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि मैं किसी जन्म में एक गंधी के साथ बैठ कर खाना खाऊँगा और नास्तिकता में मैं उससे भी बाजी मार ले जाऊँगा और धीरे-धीरे वह होकर ही रहा!

विलकिन्स साहब हमारे कालेज में अँग्रेजी के अध्यापक थे। उनमें जितनी विद्वत्ता थी छात्रों के प्रति अवज्ञा भी उतनी ही थी। उनकी शायद यह धारणा थी कि इस देश में बंगाली लड़कों को साहित्य पढ़ाना जैसे अध्यापन नहीं बल्कि कुली-मजूरी करना है। शायद इसीलिए वे मिल्टन-शेक्सपियर की क्लास में भी अँग्रेजी में 'बिल्ली' शब्द का अर्थ बताते हुए लिखवाते—'मार्जार जातीय चतुष्पद' (क्वाड्रूपेड आफ दी फेलाइन स्पेशीज़) लेकिन शचीश को नोट्स न लेने की छूट थी, वे कहा करते थे 'शचीश, तुम्हें जो इस क्लास में बैठना पड़ता है उसका घाटा मैं पूरा कर दूँगा। तुम मेरे घर आकर श्रेष्ठ साहित्य पढ़ कर अपने मन का स्वाद बदल लेना। इसकी तुम्हें छूट है।'

लड़के चिढ़ कर कहा करते, कि यह साहब शचीश को जो इतना मानता है, उसका कारण यही है कि उसका रंग कुछ गोरा है और साहब को खुश करने के लिए शचीश भी नास्तिकता की डींग हाँका करता है। इन लोगों में से दो-एक साहस करके साहब के पास जा पहुँचे और 'पाजिटिविज्म' पर कोई किताब माँगने लगे, लेकिन साहब ने जवाब दे दिया कि तुम लोग इसे समझ नहीं सकोगे। उन लोगों को उन्होंने नास्तिकता की चर्चा के लायक भी नहीं समझा। इसलिए शचीश पर घोर नास्तिकता के आरोप के साथ-साथ उसके प्रति उनका द्वेष बढ़ता ही जा रहा था।

२

सिद्धांत और आचरण को लेकर शचीश के बारे में निन्दा के जो कुछ कारण थे, उन्हें मैं यहाँ संक्षेप में दे रहा हूँ। इसका कुछ हिस्सा उसके साथ मेरे परिचय के पहले का है और कुछ हिस्सा उसके बाद का।

जगमोहन शचीश के ताऊ थे। वे अपने समय के विख्यात नास्तिक थे। किसी चीज में विश्वास नहीं करते थे ऐसा कहना अधूरा होगा, क्योंकि वे अनीश्वर में विश्वास करते थे। युद्ध-पोत के कप्तान का प्रधान धर्म जिस तरह जहाज चलाने की अपेक्षा जहाज डुबोना अधिक होता है, उसी तरह अवसर पाते ही आस्तिक धर्म की नैया डुबाना ही जगमोहन का प्रधान धर्म था। ईश्वर में विश्वास करने वाले के साथ उनका तर्क इस प्रकार चला करता था—

'ईश्वर यदि है तो मेरी यह बुद्धि उन्हीं की दी हुई है और यही बुद्धि कहती है कि ईश्वर नहीं है।

'तुम लोग इस पर भी जवाब देते हो कि ईश्वर है। इसी पाप की सजा के रूप में तैंतीस कोटि देवता तुम्हारे कान मल कर अपना जुर्माना वसूल कर रहे हैं।'

जगमोहन का विवाह बचपन में ही हुआ था। युवावस्था में जब उनकी पत्नी की मृत्यु हुई उसके पहले ही उन्होंने माल्थस साहब का साहित्य पढ़ डाला था। इसीलिए उन्होंने फिर दुबारा विवाह नहीं किया।

उनके छोटे भाई हरिमोहन शचीश के पिता थे। उनकी प्रकृति अपने बड़े भाई से इतनी अधिक भिन्न थी कि कहने पर लोगों को आसानी से विश्वास नहीं होगा। बल्कि कहीं इसका संदेह न होने लगे कि जानबूझ कर कहानी गढ़ी जा रही है। लेकिन वास्तविकता यह है कि पाठकों का विश्वास पाने के लिए कहानी स्वयं ही बहुत सोच-समझकर

चलती है। सत्य के साथ यह सारी झंझट नहीं होती। इसीलिए विचित्र होते हुए भी उसके साथ यह सारा बखेड़ा नहीं हुआ करता। तात्पर्य यह है कि जिस तरह सुबह और शाम में फर्क होता है, उसी तरह छोटे और बड़े भाई में फर्क होने के उदाहरण संसार में दुर्लभ नहीं हैं।

हरिमोहन बचपन में बीमार रहा करते थे। गंडे-तावीज, झाड़-फूँक, सन्त-सन्यासी की जटा से निचोड़े हुए जल, विशेष-विशेष तीर्थ-स्थानों की धूलि, अनेक देवताओं का चरणामृत और प्रसाद तथा अनेक गुरुओं और पुरोहितों के आशीर्वाद की किलेबन्दी वगैरह के जरिये उन्हें जैसे हर तरह के अकल्याण से सुरक्षित रखा जाता था।

बड़े होने पर बीमारी वगैरह से तो उन्हें छुटकारा मिल गया, लेकिन उनके बारे में लोगों की धारणा कम नहीं हुई कि वे बहुत ही ढीले-ढाले आदमी हैं। इसीलिए वे किसी तरह जीवित भर बने रहें; इससे अधिक का दावा उनसे और कोई नहीं करता था। और उन्होंने कम से कम इस ओर से कभी किसी को निराश नहीं किया, खासे भले-चंगे और जीवित बने रहे।

लेकिन इस बात से जरूर सबको धमकाया करते थे कि बस, यह शरीर अब चला, तब चला। विशेषकर कम उम्र में ही अपने पिता की मृत्यु हो जाने का उदाहरण देकर अपनी माँ और मौसी को वे खूब डराया करते थे और सेवा-जतन के लिए उनके ध्यान को अपने तक ही अटकाये रखते थे। सबसे पहले और सबसे अच्छे भोजन, सबसे कम काम और सबसे अधिक आराम की व्यवस्था उनके लिए रहा करती थी। केवल माँ और मौसी ही क्यों तीनों लोक के देवी-देवता पर उनकी खास जिम्मेवारी है, यह भी वे कभी नहीं भूलते थे। यही नहीं संसार में जहाँ जिसके पास जिस परिमाण में सुख-सुविधा की गुंजाइश होती थी उन सब की वे यथोचित पूजा-आराधना किया करते थे, जैसे थाने के दारोगा, धनी पड़ोसी, बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी, अखबारों के सम्पादक आदि आदि गो-ब्राह्मण की तो बात ही क्या?

लेकिन जगमोहन का बिलकुल उलटा ही हाल था। किसी से उन्हें जरा भी सुख-सुविधा की आशा हो सकती है, कहीं इसका किसी-किसी को भ्रम न हो जाय इसलिए वे हमेशा हैसियतवाले लोगों को हाथ भर दूर से ही नमस्कार किया करते थे। देवता को न मानने में भी वास्तव में उनकी यही जिद काम करती थी। लौकिक या अलौकिक किसी भी शक्ति के निकट हाथ जोड़ने के लिए वे कतई राजी नहीं थे।

यथा समय बल्कि यथा समय से काफी पहले ही हरिमोहन की शादी हो गई। तीन लड़कियों और तीन लड़कों के बाद शचीश का जन्म हुआ। सभी लोगों ने कहा कि अपने बड़े चाचा के साथ उसका चेहरा आश्चर्यजनक रूप से मिलता है। जगमोहन भी उस पर अपनेपन का कुछ ऐसा अधिकार जताने लगे, जैसे वह उनका अपना ही लड़का हो।

इसमें जो कुछ लाभ होने की सम्भावना थी उसका हिसाब लगा कर हरिमोहन आरम्भ में तो बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि जगमोहन ने स्वयं ही शचीश की शिक्षा का भार ले लिया था।

अँग्रेजी भाषा के असाधारण जानकार के रूप में जगमोहन काफी मशहूर थे। कोई उन्हें बंगाल का मैकाले तो कोई उन्हें जानसन कहता था। घोंघे की खोल की तरह वे रात-दिन अँग्रेजी किताबों से घिरे रहते थे। पहाड़ पर गोल घिसी हुई पत्थर की बटियों को देख कर जैसे यह पता लगा लेना आसान होता है कि यहाँ बहनेवाले झरने का रास्ता कौन-सा है, उसी भाँति फर्श से लेकर छत तक लगे हुए किताबों के ढेर को देख कर यह जाना जा सकता था कि घर के किन-किन भागों में उनका चलना-फिरना होता है।

हरिमोहन ने अपने बड़े लड़के पुरन्दर को लाड़ के रस में जैसे गला ही डाला था। वह जो माँगता उसके लिए वे नाहीं नहीं कर पाते थे। उसके लिए उनकी आँखों में सदा आँसू छलक आया करते थे। उन्हें ऐसा लगता जैसे जरा-सी भी बाधा देने से लड़का बचेगा नहीं। उसका

पढ़ना-लिखना तो कुछ हो ही नहीं सका और बहुत जल्दी उसका विवाह हो गया। और विवाह की चहारदीवारी में भी उसे कोई बाँध कर नहीं रख सका। हरिमोहन की पुत्रवधू इस पर बहुत जोरों से एतराज करती, लेकिन वे इसके लिए उलटे बहू पर ही नाराज हुआ करते थे। वे कहा करते कि घर में बहू के उत्पात के कारण ही उनके लड़के को बाहर सान्त्वना खोजनी पड़ती है।

इस सारे काण्ड को देख कर जगमोहन, शचीश को,—उसके पिता के स्नेह की इस विषम विपत्ति से बचाने के लिए अपने पास ही रखते थे। उसे जरा भी छूट नहीं देते थे। शचीश देखते-देखते बहुत छोटी उम्र में ही अँग्रेजी लिखने-पढ़ने में पक्का हो गया। लेकिन बात यहीं तक नहीं रुकी। मस्तिष्क में मिल और बैंन्थम की अग्नि प्रज्वलित हो उठी और शचीश मानो नास्तिकता की मशाल की भाँति प्रदीप्त होने लगा।

शचीश के साथ जगमोहन इस ढंग से रहते थे जैसे वह उनके बराबर उम्र का ही हो। गुरुजनों की भक्ति उनके मत में एक प्रकार का झूठा और नकली संस्कार था, तो मनुष्य के मन में गुलामी की भावना को बल पहुँचाता था। घर के किसी जमाई ने कभी उन्हें श्रीचरणेषु के सम्बोधन के साथ चिट्ठी लिख दी। इस पर उन्होंने उसे यह उपदेश दिया, 'माई डियर नरेन, चरण को श्री कहने का अर्थ क्या होता है सो तो मैं नहीं जानता, और न तुम ही जानते हो। इसलिए वह तो बात ही फिजूल है। इसके अलावा मुझे बिलकुल भुला कर तुमने मेरे चरण में निवेदन किया है, सो इस बारे में तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मेरे चरण मेरे ही अंश हैं, और जब तक वे मुझसे जुड़े हैं तब तक उन्हें मुझ से अलग करके देखना उचित नहीं है। फिर मेरा वह अंश हाथ भी नहीं है और न कान है, इसलिए वहाँ कुछ निवेदन करना निरा पागलपन ही होगा। इसके अलावा आखिरी बात यह है कि मेरे चरण के सम्बन्ध में बहुवचन का प्रयोग करने से भ्रम का प्रकाशन हो सकता है, क्योंकि कोई चतुष्पद तुम

लोगों का भक्तिभाजन भी है, लेकिन मैं अपने सम्बन्ध में तुम्हारी गलतफहमी को दूर कर देना उचित समझता हूँ ।'

३

शचीश के साथ जगमोहन ऐसे सभी विषयों की चर्चा किया करते थे, जिन्हें लोग अक्सर लुका-छिपा कर रखा करते हैं। इस विषय में किसी के आपत्ति करने पर वे कहते कि बर्रे का छत्ता तोड़ कर ही बर्रे को भगाया जा सकता है। इस तरह के मामलों में लज्जा को तोड़ देने से ही लज्जा के मूल को हटाया जा सकता है। मैं शचीश के मन से इस विषय सम्बन्धी लज्जा के छत्ते को तोड़ दे रहा हूँ।

पढ़ाई-लिखाई समाप्त हुई। अब हरिमोहन शचीश को अपने बड़े भाई जगमोहन के हाथ से अलग करने के लिए छटपटाने लगे, लेकिन बन्सी तब तक गले में अटक चुकी थी, इसलिए खींचातानी एक तरफ जितनी बढ़ने लगी दूसरी तरफ बन्धन भी उतना ही कसने लगा। इसलिए हरिमोहन लड़के की अपेक्षा अपने बड़े भाई पर ही अधिक से अधिक क्रुद्ध होने लगे और उनके बारे में तरह-तरह की झूठी-सच्ची न मालूम कैसी-कैसी बातें मुहल्ले में फैलाने लगे।

केवल मत-विचार रखने की ही बात होती तो एक बात भी थी, मुर्गी खाकर भद्र समाज में उसकी चर्चा करने तक भी गनीमत थी, लेकिन ये लोग तो इस हद तक बढ़ गये थे कि किसी भी तरह इनका उद्धार संभव नहीं था। लेकिन जो बात सबसे अधिक खटकती थी वह दूसरी थी।

जगमोहन के नास्तिक धर्म का एक प्रधान अंग यह था कि असहाय लोगों की सहायता की जाय। इस भलाई में और कुछ चाहे जो हो लेकिन एक बात तो तय है कि नास्तिक आदमी अगर सचमुच ही लोगों की भलाई करने जाता है तो उसे खालिस नुकसान के अलावा और कुछ भी हाथ नहीं लगता—न पुण्य मिलता है, न पुरस्कार और न किसी देवता या शास्त्र का आशीर्वाद। अगर कोई पूछता कि अधिक से अधिक

आदमियों के अधिक से अधिक सुख-साधन में आपका क्या लाभ है ? तो वे कहते कि देख बेटा, हम लोग नास्तिक हैं, इस गौरव को कुछ ऊँचा रखने के लिए हमें कुछ निष्कलंक और निर्मल रहना होगा। हम और कुछ भी नहीं मानते, इसलिये और अपने विश्वासों के मानने पर हमारा इतना जोर होना चाहिये।

अधिक से अधिक लोगों के अधिक सुख-साधन में उनका प्रधान शिष्य था शचीश। मुहल्ले में चमड़े के कुछ बड़े-बड़े आढ़ती गोदाम थे। वहाँ के सारे मुसलमान व्यापारियों और चमारों को इकट्ठा करके दोनों कुछ इस प्रकार हित अनुष्ठान में जुट गये कि हरिमोहन के मस्तक का टीका-चन्दन उनके मस्तिष्क में लंकाकांड के साज सजाने लगा। बड़े भाई के पास शास्त्र या आचार की दुहाई देने से उसका फल उलटा ही होगा, इसलिए उन्होंने पैतृक सम्पत्ति की अपव्यय की शिकायत की। इस पर बड़े भाई ने कहा कि तुमने मोटे-मुस्टंडे पंडे-पुरोहितों के पीछे जितना रुपया बहाया है, पहले मेरा खर्च वहाँ तक पहुँच जाय तब फिर तुम्हारे साथ बैठ कर मैं हिसाब करने के लिए तैयार हूँगा।

घर के लोगों ने एक दिन देखा कि जिस हिस्से में जगमोहन रहते थे उसमें एक बड़ी भारी दावत का आयोजन हो रहा है। भोजन बनाने और परोसने वाले सब मुसलमान हैं। हरिमोहन क्रोध से तिलमिलाने लगे और शचीश को डाँटकर कहने लगे, 'तो तू आज अपने सब सगे चमारों को बुला कर यहाँ खिलानेवाला है ?'

शचीश बोला, 'मेरी क्या सामर्थ्य है ? हैसियत होती तो खिलाता भी, लेकिन मेरे पास तो पैसा ही नहीं है। ताऊजी ने ही उन लोगों को न्यौता दिया है।'

पुरन्दर क्रोध से काँपता हुआ घूम रहा था और कह रहा था, 'मैं सब समझ लूँगा, सब। भला देखें तो सही वे लोग कैसे इस घर में आ पाते हैं।'

हरिमोहन ने जाकर भाई के पास अपनी आपत्ति पेश की। जगमोहन बोले, 'अपने ठाकुरजी को तुम रोज भोग चढ़ाते हो और इसके लिए मैं जरा-सी बात भी नहीं कहता। और आज मैं अपने ठाकुर जी को भोग अर्पण करने जा रहा हूँ तो इसमें तुम विघ्न न डालो।

'तुम्हारे ठाकुरजी ?'

'हाँ, मेरे ठाकुरजी।'

'तो तुम क्या ब्राह्म हो गये हो ?'

'ब्राह्म लोग निराकार को मानते हैं जिसे आँखों से देखा नहीं जा सकता। तुम लोग साकार को मानते हो जिसे कानों से सुना नहीं जा सकता। और हम लोग सजीव को मानते हैं जिसे आँखो से देखा भी जा सकता है और कानों से सुना भी जा सकता है—जिस पर विश्वास किये बिना रहा नहीं जा सकता।'

'हाँ, यही चमार-मुसलमान। मेरे देवता का एक आश्चर्यजनक सामर्थ्य तुम यहीं प्रत्यक्ष देख सकते हो कि वे भोग-सामग्री सामने अर्पित करने पर अपने आप ही उसे आकर खा लेते हैं। तुम्हारा कोई देवता यह नहीं कर सकता। मुझे इसी अद्भुत रहस्य को देख कर आनन्द आता है, और इसीलिए मैंने इस ठाकुर को अपने घर बुलाया है। देवता को देखने और पहचानने में तुम्हारी आँखें अगर इतनी अन्धी न होतीं तो तुम इस बात से प्रसन्न होते।'

पुरन्दर अपने ताऊजी के पास जाकर बहुत जोर-जोर से बकने लगा और कहने लगा कि अगर यह सब जारी रहा तो वह कोई भयानक कांड कर डालेगा।

जगमोहन ने हँस कर कहा, 'अरे ओ बन्दर, मेरे देवता कितने जीवित और जाग्रत हैं यह तू उनकी देह में हाथ लगाते ही समझ जायगा—मुझे इसके लिए कुछ भी नहीं करना पड़ेगा।'

पुरन्दर चाहे कितनी ही छाती क्यों न फुलाता, वह था असल में अपने पिता से अधिक डरपोक। जहाँ वह शान दिखा पाता था बस वहीं उसका जोर चलता था। मुसलमान पड़ोसियों को छोड़ने की उसे हिम्मत नहीं हुई। वह आकर शचीच को ही गाली देने लगा। शचीश अपनी चमकती हुई उन विचित्र आँखों को उसके चेहरे पर जमाकर चुपचाप ताकता रहा, कुछ न बोला। कहने की जरूरत नहीं कि उस दिन का भोज निर्विघ्न समाप्त हो गया।

४

इस बार हरिमोहन कमर कस कर भाई से भिड़ पड़े। जिस सम्पत्ति के सहारे उनकी गिरस्ती चल रही थी, वह थी देवोत्तर-सम्पत्ति। जगमोहन विधर्मी और आचारभ्रष्ट हैं, इसलिए इस सम्पत्ति के लिए अयोग्य हैं—इस नुक्ते को लेकर हरिमोहन ने जिला अदालत में उनके खिलाफ नालिश कर दी। मातबर गवाहों की कमी नहीं थी, मुहल्ले भर के लोग गवाही देने के लिए तैयार थे।

इस मुकदमे में उन्हें किसी विशेष कौशल की जरूरत नहीं पड़ी। क्योंकि जगमोहन ने अदालत में स्वयं ही साथ-साथ स्वीकार किया कि वे किसी देवी-देवता को नहीं मानते, खाने योग्य और न खाने योग्य का विचार नहीं रखते, मुसलमान लोग ब्राह्म थे, किस स्थान से पैदा हुए हैं, यह सब उन्हें नहीं मालूम—और उनके साथ खाने-पीने में उन्हें कोई रुकावट नहीं है।

मुन्सिफ ने जगमोहन को सम्पति के 'सेवक' पद के लिए अयोग्य घोषित कर दिया। जगमोहन के पक्ष के कानूनी विशेषज्ञों ने आशा दिलाई कि यह फैसला हाई कोर्ट में टिक नहीं सकेगा। लेकिन जगमोहन ने अपील करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा, 'जिन ठाकुरजी को मैं मानता ही नहीं, उन्हें कानून की मदद से छलना मुझे पसन्द नहीं है।

देवता को मानने की सद्बुद्धि जिनमें है, देवता को वंचित करने की धर्म-बुद्धि भी उन्हीं लोगों में होगी।'

मित्रों ने पूछा, 'तो खाओगे क्या?'

'अगर कुछ नहीं जुट सका तो धूल फाकूँगा।'

इस मामले की जीत के सिलसिले में धूमधाम करने की इच्छा ही हरिमोहन को कतई नहीं थी। वे डरते थे कि कहीं बड़े भैया के अभिशाप से कोई कुफल न हो जाय। लेकिन पुरन्दर के मन में यह आग अभी तक नहीं बुझ सकी थी कि वह उस दिन चमारों को अपने घर से भगा नहीं पाया था। किसके देवी-देवता जाग्रत हैं, यह इस बार प्रत्यक्ष ही मालूम हो गया! इसलिए उसने डंका पिटवा कर सारा मुहल्ला सर ले लिया। उस दिन जगमोहन के पास उनका कोई मित्र मिलने आ रहा था। उसे यह सब कुछ भी मालूम नहीं था। उसने आकर जगमोहन से पूछा, 'क्यों जी यह मामला क्या है?'

जगमोहन बोले, 'आज हमारे ठाकुर जी का धूमधाम के साथ विसर्जन किया जा रहा है। उसी का यह सब शोर-गुल है। पुरन्दर ने खुद ही आगे बढ़ कर इस सिलसिले में दो दिन ब्राह्मण भोजन भी करा दिया। सभी लोग पुलकित कंठ से कह उठे कि सचमुच पुरन्दर ही इस वंश का दीपक है।

दोनों भाई अलग हो गये। कलकत्ते के पुराने पैत्रिक घर में दीवार खिंच गई।

धर्म के मामले में चाहे जो कुछ हो, लेकिन रुपये-पैसे और खाने-पहनने के मामले में लोगों में एक स्वाभाविक सद्बुद्धि और समझदारी होती है। इस विश्वास के कारण हरिमोहन के मन में मनुष्य जाति के प्रति एक प्रकार की निष्ठावान् श्रद्धा थी। उन्हें सोलहों आने इस बात का इतमीनान था कि इस बार उनका बेटा धनहीन जगमोहन को छोड़ कर

कम से कम भोजन की गंध से ही उनके सोने के पिंजड़े में आ फँसेगा। लेकिन शचीश ने यह प्रकट कर दिया कि उसने अपने पिता की धर्म-बुद्धि या कर्म-बुद्धि में से एक भी नहीं पायी है। वह अपने ताऊजी के साथ ही बना रहा।

जगमोहन हमेशा से शचीश को इस तरह बिलकुल अपना-सा मानने के आदी हो गये थे कि आज इस बँटवारे के दिन भी शचीश उनके हिस्से में पड़ गया, इस पर उन्हें तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। लेकिन हरिमोहन अपने बड़े भैया को खूब अच्छी तरह पहचानते थे। उन्होंने लोगों के बीच यह अफवाह उड़ानी शुरू की कि जगमोहन शचीश को अपने पास रोक कर अपने अन्न-वस्त्र का सुभीता करने की फिराक में हैं। उन्होंने बहुत ही साधु भाव दिखा कर और अपनी आँखों में पानी लाकर सबके सामने यह कहना शुरू किया, 'क्या मैं भैया को खाने-पहनने की तकलीफ दे सकता हूँ? लेकिन वे मेरे लड़के को अपनी मुट्ठी में रख कर यह जो शैतानी खेल खेल रहे हैं, इसे मैं सहन नहीं कर सकता। देखता हूँ, कितनी चालाकी है उनमें!'

यह बात जब मित्रों की जबानी अन्त में जगमोहन के कानों तक पहुँची तो वे सहसा चौंक पड़े। ऐसी बात भी उठायी जा सकती है, इसका उन्होंने ख्याल तक नहीं किया था। यह सोच कर वे अपने को धिक्कारने लगे। शचीश से उन्होंने कहा, 'गुड बाई, शचीश!'

शचीश समझ गया कि किस व्यथा से पीड़ित होकर जगमोहन ने यह कहा है। और वह यह भी जानता था कि इस पर कोई दलील काम नहीं कर सकेगी। जन्म से लेकर आज अठारह साल के अटूट सम्पर्क से शचीश को बिदा लेनी पड़ी। जब वह अपना सन्दूक और बिस्तरा गाड़ी पर लदवा कर उनसे दूर चला गया तो जगमोहन दरवाजे बन्द करके अपने कमरे में आ गये और फर्श पर ही पड़े रहे। शाम घनी हो आयी, उनके पुराने नौकर ने घर में दीया जलाने के लिए दरवाजे पर थाप दी, लेकिन कोई जवाब नहीं मिला।

शचीश ने गाड़ी बुलवाकर अपना सामान उस पर क्यों लदवाया है, यह भी जगमोहन से पूछते नहीं बना। घर के जिस हिस्से में उसके पिता रहते थे उसमें वह गया ही नहीं, वह जाकर ठहरा अपने एक मित्र के छात्रावास में। अपना ही लड़का भला कैसे पराया हो सकता है यही सोच कर हरिमोहन बार-बार आँसू बहाने लगे। उनका हृदय बहुत ही कोमल था। घर का बँटवारा होने के बाद पुरन्दर ने हठ करके अपने हिस्से में ठाकुरजी की प्रतिष्ठा करायी। रोज शाम-सुबह घंटा-घड़ियाल और शंख का तुमुल कोलाहल सुनते-सुनते जगमोहन के कान बहरे हुए जा रहे होंगे, यही सोच कर वह खुशी से फूला नहीं समाता था।

शचीश ने एक प्राइवेट ट्यूशन कर ली और जगमोहन ने किसी इंट्रेन्स स्कूल की मास्टरी जुटा ली। और उधर हरिमोहन और पुरन्दर इन दोनों नास्तिक शिक्षकों के प्रभाव से भले घर के बच्चों को बचाने की भरसक कोशिश करने लगे।

५

कुछ दिनों बाद शचीश एक दिन जगमोहन के पढ़ने-लिखने के कमरे में आ उपस्थित हुआ। दोनों में प्रणाम-आशीष की प्रथा नहीं थी। जगमोहन ने शचीश को गले से लगाया और हाल-चाल पूछे।

शचीश के पास एक खबर थी।

ननीबाला अपनी विधवा माँ के साथ अपने मामा के यहाँ टिकी हुई थी। जितने दिन माँ जीवित रही तब तक तो किसी प्रकार कोई दिक्कत नहीं हुई। लेकिन थोड़े दिन हुए माँ मर गई। ममेरा भाई दुश्चरित्र है उसका ही कोई दोस्त ननीबाला को उसके आश्रय से निकाल ले गया। लेकिन कुछ दिनों बाद उसे ननी पर शक होने लगा और अब उसने ईर्ष्या के कारण उसके अपमान की कोई सीमा नहीं रखी है। जिस घर में शचीश पढ़ाने जाता है उसी के पास वाले मकान में यह काण्ड हुआ है।

चतु०—२

और अब शचीश उस हतभागिनी का उद्धार करना चाहता है। लेकिन उसके पास न तो पैसा है, न कौड़ी और न घर-द्वार ही है। इसीलिए वह अपने ताऊ जी के पास आया है। इधर लड़की के बच्चा होने की भी सम्भावना है।

यह सुन कर जगमोहन को तो जैसे आग ही लग गई। लगा जैसे अगर उस आदमी को पा जायँ तो उसका सिर ही तोड़ डालेंगे। ऐसे मामले में शान्तचित्त होकर सोच-विचार से काम लेने वाले आदमी वे नहीं थे। एकदम से बोले, 'ठीक तो है। मेरा लाइब्रेरी वाला कमरा खाली ही है। उसे वहीं रख लेंगे।'

शचीश चकित होकर बोला, 'लाइब्रेरी वाला कमरा? लेकिन किताबें?'

जितने दिन काम नहीं मिल सका था, जगमोहन ने किताबें बेंच-बेंचकर ही काम चलाया था। इसलिए इस समय जो थोड़ी-बहुत किताबें बाकी बची थीं वे आसानी से उनके सोने वाले कमरे में समा सकती थीं।

वे बोले, 'जाकर अभी लड़की को ले आओ।'

शचीश ने कहा, 'साथ ही लेता आया हूँ, वह नीचे के कमरे में बैठी है।'

जगमोहन तूफान की तरह दौड़े और नीचे कमरे में पहुँच कर बोले, 'आओ माँ, आओ! जमीन पर क्यों बैठी हो?'

लड़की मुँह में आँचल ठूँस कर सिसक-सिसक कर रोने लगी।

जगमोहन की आँखों में सहज ही पानी नहीं आता था, लेकिन आज वे सहज ही डबडबा आईं। उन्होंने शचीश से कहा, 'शचीश आज से इस बच्ची की लाज मेरी और तुम्हारी लाज है। आह, इस पर इतना बड़ा बोझ किसने लाद दिया माँ!—माँ, मेरे निकट तुम्हारा संकोच नहीं टिक सकेगा। मुझे बचपन में लड़के पगला जगाई कहा करते थे। आज भी मैं वही पगला का पगला हूँ।' यह कहते-कहते जगमोहन ने लड़की को दोनों

हाथ से थाम कर जमीन से उठा कर खड़ी कर लिया। उसका घूँघट खिसक गया।

बिलकुल कच्चा चेहरा, कच्ची उमर, कलंक का जैसे कहीं लेशमात्र चिन्ह तक नहीं दिखाई दिया। फूल पर जैसे धूल बैठ जाती है तो उसकी सुन्दरता नष्ट नहीं होती, उसी भाँति इस शिरीष के सामन कोमल तरुणी की आन्तरिक पवित्रता का लावण्य जरा भी मिट नहीं सका था। उसकी दोनों सहमी हुई आँखों में घायल हरिणी की-सी भयभीत दृष्टि थी, देह रूपी लता में एक प्रकार का सहज संकोच था और इस करुण भाव भंगिमा में कालिख की तो कोई जगह ही नहीं थी।

ननीबाला को जगमोहन अपने ऊपर वाले कमरे में ले आये और बोले, 'देखो माँ, यह मेरे घर की हालत है। सात जनम से झाड़ू नहीं लगी, सब कुछ उलटा-पुलटा पड़ा है। और मेरी बात न पूछो, कब नहाता हूँ, कब खाता हूँ इसका कुछ भी ठिकाना नहीं। अब तुम आई हो तो मेरे घर की शोभा लौट आयेगी। और पगला जगाई भी शायद आदमी बन बैठेगा।'

मनुष्य कितनी दूर तक मनुष्य का अपना होता है, यह आज तक ननीबाला ने कभी अनुभव ही नहीं किया था—माँ के रहते भी नहीं। क्योंकि माँ तो उसे केवल लड़की की नजर से देखती नहीं थी, वह तो उसे विधवा लड़की की नजर से देखती थी। इसलिए वह संबंध तो आशंका के छोटे-मोटे काँटों से भरा हुआ था। लेकिन जगमोहन बिलकुल अपरिचित होकर भी सारे भले-बुरे का कोई ख्याल न करके कैसे उसे अपना सके, यह उसके लिए आश्चर्य की बात थी।

जगमोहन ने एक बूढ़ी दासी रख ली और ननीबाला को किसी तरह की दिक्कत नहीं होने दी। ननी को सबसे बड़ा भय इस बात का था कि जगमोहन उसके हाथ का खाये या नहीं—वह एक पतिता नारी जो ठहरी, लेकिन हुआ इसका उल्टा ही। जगमोहन उसके हाथ का छोड़ कर और

किसी के हाथ का खाना पसन्द ही नहीं करते थे। वह खुद बना कर और पास बैठ कर जब तक खिलाती नहीं थी तब तक वे खाते ही नहीं थे।

जगमोहन जानते थे कि इस बार लोकनिन्दा की एक और भी विकट आँधी आने वाली है। ननी भी इसे समझ रही थी और इसीलिए इस ओर से उसके भय की कोई सीमा नहीं थी।

और दो-चार दिन के भीतर ही इसका श्री गणेश हो गया।

नौकरानी ने पहले तो जगमोहन की लड़की ही समझा था, लेकिन फिर बाद में एक दिन वह पीछे से आकर न जाने क्या-क्या कह गई और काम छोड़ कर चली गई। नौकरानी की बात सोच कर ननी का मुँह सूख आया।

लेकिन जगमोहन ने कहा, 'माँ, मेरे घर में पूर्णचन्द्र का उदय हुआ है, इसलिए निन्दा का ज्वर भी बस उठने वाला ही समझो। लेकिन ज्वार की लहरें कितनी ही गंदी क्यों न हों, मेरी चाँदनी पर तो दाग-नहीं छोड़ सकतीं।'

जगमोहन की एक बुआ हरिमोहन के घर की ओर से आकर बोली, 'छिः छिः, जगाई, यह कैसा काण्ड! इस पाप को फौरन घर से बिदा कर दो!'

जगमोहन ने कहा, 'तुम लोग धार्मिक हो इस लिए ऐसी बातें कर सकती हो, लेकिन अगर पाप को बिदा कर दूँगा तो मुझ पापिष्ठ की क्या गति होगी?'

फिर रिश्ते की एक नानी ने आकर कहा, 'इस छोकरी को अस्पताल भेज दे। हरिमोहन सारा खर्च सहने के लिए तैयार है।'

जगमोहन ने कहा, 'माँ, ठहरो, रुपये-पैसे की सुविधा की गरज से इस माँ को अस्पताल भेज दूँ—भला यह खूब सुझाया हरिमोहन ने!'

नानी गाल पर हाथ रख कर बोलीं, 'माँ किसे कहता है, रे?'

वे बोले, 'जो जीव को गर्भ में धारण करती हैं उन्हें। जो अपने प्राणों को जोखिम में डाल कर भी बच्चे को जन्म देती हैं उन्हें। उस बच्चे के पाखंडी बाप को तो मैं बाप नहीं कहता न। वह दुष्ट तो बस विपदा बुला लाता है, फिर बाद में क्या होता है इससे उसे कोई मतलब नहीं।'

हरिमोहन ने जब यह सुना तो उसकी देह में घृणा के जैसे काँटे चुभ आये। एक सद्गृहस्थ के घर की दीवार के उस पार—बाप-दादों के पुश्तैनी अन्तःपुर में एक भ्रष्ट लड़की इस तरह रहे! भला इसे कैसे बरदाश्त किया जा सकता है? इस पाप में शचीश भी पूरी तरह से शामिल होगा और उसके ताऊजी इसमें उसे प्रोत्साहित करते होंगे, इसमें हरिमोहन को जरा देर के लिए भी संदेह नहीं हुआ। बड़े जोर-शोर से उन्होंने चारों ओर इसका प्रचार करना शुरू कर दिया। लेकिन जगमोहन ने इस अन्याय या निन्दा को कम करने या रोकने की कोई कोशिश नहीं की।

उन्होंने कहा, 'हम नास्तिकों के धर्मशास्त्र में अच्छे काम के लिए निन्दा के नरक-भोग का ही विधान है।'

जनश्रुति नित नये रंग में नये रूप धरती सामने आयी और जगमोहन शचीश के साथ उस पर हँसते ही रहे। ऐसा कुत्सित काम भतीजे के साथ मिल कर किया जा सकता है, ऐसा तो आज तक हरिमोहन और उसके जैसे अन्य भद्र श्रेणी के लोगों ने सुना तक नहीं था।

जगमोहन घर के जिस हिस्से में रहता था उसमें बँटवारे के बाद पुरन्दर की कभी छाया तक नहीं फटकती थी। लेकिन धर्म की रक्षा के नाम पर उसने प्रण किया कि वह पहले उस छोकरी को घर से बाहर करेगा, फिर इसके बाद ही और कोई काम करेगा।

जगमोहन जब स्कूल जाते थे तब घर में आने के सारे रास्ते अच्छी तरह से बन्द कर के ही जाते थे, और जब भी काम से जरा-सी फुरसत पाते तो बीच में आकर एक बार घर देख जाया करते थे।

एक दिन पुरन्दर अपनी छत की दीवार की ओर सीढ़ी लगा कर जगमोहन के हिस्से की ओर कूद आया। उस समय ननीबाला खा-पीकर अपने कमरे में सोई पड़ी थी और दरवाजा खुला पड़ा था।

पुरन्दर घर में घुसते ही सोती हुई ननी को देख कर विस्मय और क्रोध से चीख पड़ा, 'अरे, तू यहाँ !'

नींद खुलते ही सामने पुरन्दर को पाकर ननी का चेहरा फक् रह गया। वह उठ कर वहाँ से भाग सके या मुँह से कोई बात भी निकाल सके, इतनी शक्ति भी उसमें नहीं बची उस समय। पुरन्दर ने क्रोध में काँपते हुए पुकारा, 'ननी ! ननी !!'

लेकिन तब तक जगमोहन वहाँ आ पहुँचे और पीछे से कमरे में घुसते हुए चीखे, 'निकल, निकल यहाँ से !'

पुरन्दर गुस्से में बिलोटे की तरह फुफकारने लगा। जगमोहन ने कहा, 'अगर नहीं निकलता है तो मैं अभी पुलिस बुला लूँगा ! निकल यहाँ से !'

पुरन्दर ने आँखों से आग बरसाते हुए ननी की ओर देखा और बाहर का रास्ता लिया। ननी मूर्छित होकर गिर पड़ी।

जगमोहन को समझते देर नहीं लगी कि मामला क्या है। शचीश को बुलाने से मालूम हुआ कि वह पहले से ही जानता था कि ननी को पुरन्दर ने ही नष्ट किया था। कहीं क्रोध में आकर ताऊजी कोई झगड़ा न खड़ा कर बैठें, इसीलिए उसने पहले नहीं बताया था। शचीश जानता था कि कलकत्ता शहर में अन्यत्र कहीं भी पुरन्दर की दुष्टता से ननी का बच पाना संभव नहीं है, सिर्फ ताऊजी का घर ही ऐसा है जहाँ वह आ नहीं सकेगा।

कुछ दिनों तक तो ननी किसी भयानक आशंका के मारे हवा में बाँस के पत्तों की तरह काँपती रही। फिर कुछ समय बाद उसने एक मरे हुए शिशु को जन्म दिया।

पुरन्दर ने एक दिन ननी को लात मार कर आधी रात के समय घर के बाहर कर दिया था। इसके बाद बहुत खोज-बीन करने के बाद भी वह उसे पा नहीं सका और अब जब अचानक उसने उसे ताऊजी के घर में देखा तो वह सिर से पैर तक ईर्ष्या की आग में जल गया। उसे लगा कि एक तो शचीश अपने ही लिए ननी को उससे छीन लाया है और दूसरे उसका अपमान करने के उद्देश्य से ही उसने ननी को उसके घर के बिल्कुल पड़ोस में रख छोड़ा है। अब यह तो किसी भी तरह नहीं सहा जा सकता। यह बात हरिमोहन को भी मालूम हो गई। इसे हरिमोहन को बता देने में पुरन्दर को किसी तरह की लज्जा नहीं मालूम हुई। पुरन्दर की इस सारी दुष्ट प्रकृति के प्रति हरिमोहन के मन में एक प्रकार का स्नेह था।

शचीश अपने ही बड़े भाई से इस लड़की को छीन ले यह बात उन्हें बहुत ही अशास्त्रीय और अस्वाभाविक मालूम हुई। पुरन्दर इस असह्य अपमान और अन्याय का जवाब देकर अपना अधिकार फिर से प्राप्त कर सके बस यही उनका एकमात्र संकल्प हो उठा। उन्होंने खुद ही कहीं से एक जाली माँ ढूँढ़-ढाँढ़कर उसे जगमोहन के पास रोने-मिनमिनाने के लिए भेज दिया। जगमोहन ने उसे कुछ इस तरह रौद्र रूप में डाँट-फटकार कर वहाँ से खदेड़ा कि फिर उसने कभी इधर आने का नाम तक नहीं लिया।

ननी तो जैसे दिनोंदिन म्लान होकर छाया की भाँति गायब होने की तैयारी कर रही थी। उन दिनों बड़े दिन की छुट्टियाँ थीं। जगमोहन कभी पल भर के लिए भी ननी को अकेली छोड़ कर बाहर नहीं जाते थे। एक दिन वे शाम को उसे स्काट की किसी कहानी का बँगला में अनुवाद करके सुना रहे थे कि इसी बीच पुरन्दर एक अन्य युवक को साथ लेकर तेजी से कमरे में घुस आया। उन्होंने जैसे ही पुलिस को खबर देने का निश्चय किया कि वह युवक बोला, 'मैं ननी का भाई हूँ, उसे लिवाने के लिए आया हूँ।'

उसकी बात का कोई जवाब न देकर वे पुरन्दर को तौलते हुए कन्धे पर उठा कर जीने तक ले आये और वहाँ से उसे एक ही धक्के में नीचे की ओर रवाना कर दिया। फिर उस युवक की ओर मुड़ कर बोले, 'पाखंडी ! शर्म नहीं आती ? रक्षा करने के समय तो तुम ननी के कोई नहीं और उसका सर्वनाश करने के लिए उसके भाई बन बैठे।'

वह आदमी तुरन्त वहाँ से चला गया, लेकिन जाते-जाते कहता गया कि वह अपनी बहन का उद्धार पुलिस की मदद से करेगा। वह सचमुच ही ननी का भाई था। पुरन्दर असल में उसे यह सिद्ध करने के लिए बुला लाया था कि वास्तव में शचीश ही ननी के पतन का कारण है।

ननी मन ही मन प्रार्थना करने लगी, 'माँ धरती, तू फट क्यों नहीं जाती ?'

जगमोहन ने शचीश को बुला कर कहा, 'मैं ननी को लेकर पश्चिम के किसी शहर में चला जाता हूँ। वहाँ जैसे भी कुछ होगा, अपने और ननी के लिए जीविका जुटा लूँगा। यहाँ जिस तरह उत्पात हो रहा है उसे देखते हुए तो लगता है कि यह लड़की यहाँ नहीं बच सकेगी।'

शचीश बोला, 'जब बड़े भैसे जूझ ही गये हैं तब आप कहीं भी क्यों न जायें, यह उत्पात साथ-साथ ही जायगा।'

'तब उपाय क्या है ?'

'उपाय यह है कि मैं ननी के साथ ब्याह किये लेता हूँ।'

'ब्याह ?'

'हाँ, सिविल विवाह।'

जगमोहन ने प्यार से शचीश को गले से लगा लिया। उनकी आँखों से झरझर आँसू गिरने लगे। आज तक उन्होंने कभी इस तरह आँसू नहीं बहाये थे।

६

बँटवारे के बाद एक दिन भी हरिमोहन जगमोहन को देखने नहीं आये थे। उस दिन अचानक बहुत अस्त-व्यस्त अवस्था में आ खड़े हुए। बोले, 'भैया, यह कैसी सत्यानासी खबर सुन रहा हूँ ?'

जगमोहन ने कहा, 'सत्यानाश ही होने वाला था, अब तो उससे रक्षा का उपाय हो रहा है।'

'भैया ! शचीश तुम्हारे लड़के के समान है। उसके साथ तुम उस पतिता की शादी करोगे ?

'भैया, शचीश को मैंने अपने बच्चे की तरह मान कर ही बड़ा किया है। आज वह सार्थक हुआ, उसने हमारा मुँह उज्ज्वल कर दिया।'

'भैया, मैं तुम से हार मान गया—अपनी संपत्ति में से मैं आधी तुम्हारे नाम लिखे देता हूँ। तुम मेरे साथ ऐसा भयानक बदला न चुकाना।'

जगमोहन चौकी छोड़ कर उठ खड़े हुए और बोले, 'वाह-वाह, खूब कहा ! अपनी जूठी पत्तल का आधा हिस्सा मेरी ओर फेंक कर तुम मुझे कुत्ते की तरह बहलाने आये हो। मैं तुम्हारी तरह धार्मिक नहीं नास्तिक हूँ। इसे याद रखना। मैं किसी से बदला भी नहीं लेता और न दया की भीख माँगता हूँ।'

हरिमोहन शचीश के बोर्डिंग पहुँचे। उसे अलग ले जाकर उन्होंने कहा, 'यह क्या सुन रहा हूँ ? तुझे क्या मरने की भी जगह नहीं जुटी, जो इस तरह कुल में कलंक लगाने चला है ?'

शचीश बोला, 'कुल में लगे हुए कलंक को मिटाने के लिए ही तो मैं यह प्रयत्न कर रहा हूँ, वरना ब्याह करने का शौक मुझे नहीं है।'

हरिमोहन बोले, 'तो तुझे क्या जरा-सा भी धर्म-ज्ञान नहीं है ? वह लड़की तेरे भाई की स्त्री के समान है। उसे तू—'

शचीश बात काट कर बोला, 'स्त्री के समान है? ऐसी बात भी जबान पर न लायें।'

फिर इसके बाद तो हरिमोहन गुस्से में जो मन में आया बकते चले गये। शचीश ने कोई जवाब नहीं दिया।

इधर हरिमोहन के लिए एक और मुसीबत खड़ी हो गई। पुरन्दर निर्लज्ज की तरह कहता फिर रहा था कि अगर शचीश उस ननी से शादी करेगा तो मैं आत्महत्या कर लूँगा। और उधर पुरन्दर की स्त्री कहती थी कि अगर सचमुच ऐसा हो सके तो बड़ा अच्छा हो, सारी विपदा ही कट जाये। लेकिन तुम से यह होने से रहा! आत्महत्या वाली धमकी पर हरिमोहन ने सचमुच ही विश्वास कर लिया हो ऐसी कोई बात नहीं थी, फिर भी मन में शंका बनी रहती थी।

शचीश इतने दिन ननी से बचकर ही चलता था। अकेले में तो एक दिन भी मिलना नहीं हुआ। उसके साथ उसकी दो बातें भी हुई होंगी इसमें सन्देह है। ब्याह की बात जब ठीक हो गई तब एक दिन जगमोहन ने शचीश से कहा, 'विवाह के पहले एक बार ननी से बात तो कर लो। दोनों के लिए एक दूसरे का मन पहचान लेना बहुत जरूरी है।'

शचीश राजी हो गया।

जगमोहन ने दिन ठीक कर दिया। ननी से उन्होंने कहा, 'माँ, आज तो तुम्हें मेरे मन के अनुसार सजना होगा।'

ननी ने लाज से सिर नीचा कर लिया।

'न, माँ, लजाने से काम नहीं चलेगा, मेरे मन में इसकी बड़ी भारी साध है कि तुम्हें सजा हुआ देखूँ। यह तो तुम्हें करना ही होगा।' यह कह कर उन्होंने अपनी पसन्द से बढ़िया बनारसी साड़ी और कुर्ती वगैरह उसके हाथ में रख दी।

ननी ने जमीन पर सिर झुका कर उनके पैरों की धूलि अपने माथे

पर ली और प्रणाम किया। घबरा कर पाँव पीछे हटाते हुए जगमोहन बोले, 'देखता हूँ इतने दिनों की कोशिश के बाद भी तुम्हारी भक्ति नहीं मिटा पाया हूँ। यह ठीक है कि मैं तुम से उम्र में बड़ा होकर बड़ा बन गया हूँ। लेकिन माँ तुम तो माँ होकर मुझ से भी बड़ी हो। यह कह कर उसका माथा चूमकर उन्होंने कहा, 'आज भवतोष के यहाँ मेरा निमंत्रण है, लौटते हुए कुछ रात हो जायगी।'

ननी ने उनका हाथ थाम कर कहा, 'बाबा, तुम आज मुझे आशीर्वाद दो।'

'माँ, मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि तुम बुढ़ापे में इस नास्तिक को आस्तिक बना कर ही छोड़ोगी। मैं आशीर्वाद में धेला भर भी विश्वास नहीं करता, लेकिन तुम्हारा चेहरा देख कर सचमुच ही आशीर्वाद देने का मन होता है!' वे उसकी ठोढ़ी से उसके चेहरे को ऊपर उठा कर कुछ देर तक अपलक देखते रह गये। ननी की आँखों से आँसू की धार बरसने लगी।

शाम के समय एक आदमी भवतोष के यहाँ से जगमोहन को बुला लाने के लिए दौड़ा गया। उन्होंने आकर देखा, ननी बिछौने पर निष्प्राण पड़ी हुई है। जो कपड़े उन्होंने उसे दिये थे, उन्हीं को वह पहने थी। हाथ में एक चिट्ठी लिये उसके सिरहाने शचीश खड़ा था। चिट्ठी खोल कर जगमोहन ने एक ही साँस में पढ़ डाली—

'बाबा, हो नहीं सका, मुझे माफ करना। तुम्हारी बात सोच कर इतने दिनों मैंने अपने भरसक कोशिश की, लेकिन उन्हें आज भी भुला नहीं सकी। श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम—पापमयी, ननीबाला।'

शचीश

१

नास्तिक जगमोहन ने अपने मरने के एक दिन पहले शचीच से कहा, 'अगर तुम्हें श्राद्ध करने का शौक हो तो समय आने पर अपने पिता का श्राद्ध कर लेना, लेकिन अपने ताऊ को इससे बरी रखना।'

तो, उनकी मृत्यु का विवरण यह है कि कलकत्ते में जिस साल प्लेग के पहली बार दर्शन हुए उस समय प्लेग की अपेक्षा लोग तमगा-धारी सरकारी चपरासियों से अधिक परेशान थे। हरिमोहन ने मन ही मन सोचा कि उनके पड़ोसी चमारों वगैरह पर महामारी का प्रकोप पहले होगा और फिर उनके पड़ोस में रहने के कारण बाद में अपनी भी पारी आ जायगी। इसलिए घर छोड़ कर भागने से पहले एक बार उन्होंने अपने बड़े भाई से कहा, 'भैया, बर्दवान जिले के कालना नाम के नगर में गंगा के तट पर एक घर मिल गया है—अगर—'

जगमोहन ने कहा, 'खूब! इन लोगों को यहीं मौत के मुँह में छोड़ कर भला जाया कैसे जायगा?'

'किन लोगों को?'

'क्यों, इन्हीं मुहल्लेवालों को।'

और हरिमोहन मुँह बिचका कर चले गये। बोर्डिंग में जाकर शचीश से बोले, 'चलो, चलें।'

शचीश ने कहा, 'मुझे काम है।'

'चमारों के मुर्दे ढोने का काम न?'

'जी हाँ, अगर जरूरत पड़े तो—'

'जी हाँ, क्यों नहीं! अगर जरूरत पड़े तो आप अपने चौदह पुरखों को भी नरक भेज सकते हैं। पाजी, लम्पट, नास्तिक कहीं का!'

इन घोर कलियुगी लक्षणों को देख कर हताश होकर हरिमोहन घर लौट आये। उस दिन उन्होंने ग्लानि मिटाने के लिए लगभग एक दस्ते भर पीले कागजों पर 'दुर्गा-दुर्गा' लिख डाला।

और अंत में हरिमोहन चले गये। मुहल्ले में प्लेग फैला। कहीं कोई ले जाकर अस्पताल में न डाल दे यह सोच कर लोग डाक्टर को भी नहीं बुलाना चाहते थे। जगमोहन खुद जाकर प्लेग का अस्पताल देख आये। आकर बोले, 'बीमारी हुई है तो इसमें आदमी का क्या दोष है, जो उसे ऐसी बेदर्द सजा दी जाय!'

इसलिए उन्होंने कोशिश करके अपने घर में ही एक प्राइवेट अस्पताल खोल लिया। शचीश के साथ हम दो-एक और लड़के भी जन-सेवा का भार उठा रहे थे। हमारे दल में एक डाक्टर भी थे।

हम लोगों के अस्पताल का पहला मरीज था एक मुसलमान। वह बेचारा बचा नहीं, मर गया। दूसरे रोगी खुद जगमोहन ही थे। वे भी मृत्यु-शय्या पर लेटे हुए बोले, 'शचीश, इतने दिन जिस धर्म को मानता आया, आज उसका अंतिम पुरस्कार भी प्राप्त कर लिया। मुझे अब मरने में कोई दुख नहीं है।'

शचीश ने जीवन भर अपने ताऊजी को प्रणाम नहीं किया था।

आज मृत्यु के बाद उसने आखिरी बार उनके पैरों की धूल लेकर अपने माथे से लगा ली।

इसके बाद जब शचीश की मुलाकात हरिमोहन से हुई तो वे बोले, 'नास्तिक की मौत ऐसी ही होती है।'

वह भी गर्व के साथ बोला, 'जी, हाँ। ठीक ऐसी ही।'

२

एक फूँक मार कर बत्ती बुझा देने से जैसे एकाएक रोशनी गायब हो जाती है, उसी तरह जगमोहन की मृत्यु के बाद अचानक शचीश कहाँ चला गया, यह हम लोग जान ही नहीं पाये। अपने ताऊजी को शचीश कितना चाहता था, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। वे शचीश के पिता थे, सखा थे और यहाँ तक कहा जा सकता है कि पुत्र भी थे। क्योंकि अपने बारे में वे इतने भुलक्कड़ रहा करते थे, सांसारिक मामलों में इतने नादान थे कि उन्हें तरह-तरह की दिक्कतों से बचाने के लिए शचीश को ही आगे आना होता था; बल्कि यही उसका प्रधान कार्य था। शचीश ने भी अपने ताऊजी से ही अपना सब-कुछ पाया था, और उनके बहाने ही अपना सब-कुछ दान भी किया था।

इसलिए शुरू में उनके वियोग ने शचीश को किस तरह दुखी कर रखा होगा, इसे समझ पाना मुश्किल है। इस असह्य पीड़ा के दिनों में शचीश को बार-बार यही लगा कि स्वयं शून्य भी कभी इतना शून्य नहीं हो सकता। जो कल तक सम्पूर्ण सत्य था आज वह अचानक गायब है, इससे बढ़ कर खालीपन और क्या होगा?

दो साल तक शचीश न मालूम कहाँ-कहाँ देश-विदेश भटकता रहा। उसकी कोई खबर ही नहीं मिली। दिल लगा कर हम लोगों ने और भी जोर-शोर से काम करना शुरू कर दिया। जो लोग धर्म के

नाम पर कछ भी मानते थे उनसे हमलोग जबर्दस्ती उलझ जाते, उनके पीछे पड़ जाते, खामखाह झगड़ा खड़ा कर लेते और उनकी जान जला डालते थे। हम लोग खूब चुन-चुनकर ऐसे कामों में जोर-शोर के साथ लग गये, जिनसे भले आदमियों के लड़के हमारे बारे में एक भली बात न सोच सकें। शचीश हमारा फूल था। जब फूल ही कहीं दूर जा पड़ा तो हमारे काँटे अधिक चुभीले होकर और अधिक तेज हो गये।

३

दो साल तक शचीश का कोई पता नहीं चला। शचीश की निन्दा करने का मुझे कभी जी नहीं हुआ था। लेकिन आज मन ही मन यह ख्याल किये बिना रह नहीं सकता कि शचीश जिस सुर में बँधा था वह सुर अब धक्का खाकर नीचे उतर गया था। एक बार किसी संन्यासी को देख कर ताऊजी ने कहा था, 'संसार आदमी को उसी तरह जाँच लेता है जैसे अनुभवी खजांची सिक्कों को जाँचता है—दुख या हानि के आघात से, मुक्ति के लाभ के लालच दिखा कर। और इसमें जिनकी आवाज मन्द पड़ती है उन्हें वह उठा कर दूर फेंक देता है। ये बैरागी लोग वह फेंके हुए खोटे सिक्के हैं, जो जीवन के कारबार के उपयुक्त नहीं हैं। और ये ही लोग शेखी बघारते फिरते हैं कि उन्होंने खुद ही संसार का त्याग किया है। बात दरअसल उल्टी होती है। जिसमें तनिक-सी भी योग्यता है उसे दुनिया से जरा-सा भी टस से मस होने की जरूरत नहीं। सूखा पत्ता पेड़ से झड़ कर गिर पड़ता है, वह बेकार की चीज जो है।'

इतने लोगों के रहते क्या हमारा शचीश भी उसी जगह जा पड़ा? क्या दुख की कसौटी ने यही तय कर दिया कि जीवन के हाट में शचीश की कोई बिसात नहीं?

इसी बीच अचानक सुनने में आया कि शचीश, हमारा शचीश, चटगाँव के पास किसी गाँव में लीलानन्द स्वामी के साथ में मस्त, करताल बजाता हुआ इधर-उधर नाचता फिर रहा है।

एक दिन वह भी था जब मैं किसी भी तरह यह नहीं सोच पाता था कि शचीश जैसा आदमी कैसे नास्तिक हो सकता है। और आज किसी भी तरह यह समझ में नहीं आता कि यह लीलानन्द स्वामी उसे किस तरह नचाता फिर रहा है।

हमारे लिए समस्या थी कि हम मुँह कैसे दिखायें लोगों को! दुश्मनों का दल हँसे बिना रहेगा नहीं। और हम लोगों ने कोई एक दो दुश्मन तो बनाये नहीं थे!

हमारे दल के लोग तो शचीश के खिलाफ गुस्से से आग बबूला हो रहे थे। बहुतों ने तो यहाँ तक कह डाला कि वे तो शुरू से ही जानते थे कि शचीश के भीतर कुछ भी ठोस नहीं है, उसमें तो सिर्फ खोखली भावुकता है।

शचीश से मुझे कितना प्यार था यह मुझे पहली ही बार मालूम हुआ। हमारे दल की छाती पर उसने इस तरह घातक प्रहार किया था; लेकिन फिर भी मुझसे उस पर क्रोध करते नहीं बनता था।

४

मैं लीलानन्द स्वामी की खोज में निकल गया। न मालूम कितनी नदियाँ पार कीं, कितने खेत-खलिहान पार किये, न मालूम किन-किन रास्तों की खाक छानी, तब कहीं अन्त में एक गाँव में मैं शचीश का पता पा सका। उस समय दिन के लगभग दो बज रहे होंगे।

चाहता तो यही था कि शचीश से अकेले में मिल पाऊँ, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। क्या किया जाय! चेले के घर में स्वामी जी ने आश्रय ले रखा है और उसके घर का आँगन और बरामदा लोगों की भीड़ से भरा

है। सुबह का पूरा वक्त कीर्तन में ही बीत गया। जो लोग दूर से आये हैं उनके खाने-पीने की अच्छी व्यवस्था की जा रही है।

मुझे देखते ही शचीश ने दौड़ कर छाती से लगा लिया। मैं तो हैरान रह गया; क्योंकि शचीश सदा बहुत गम्भीर और संयत रहता आया था। गम्भीरता में ही उसके हृदय की गहराई का पता चलता था। लेकिन आज मुझे ऐसा लगा जैसा शचीश ने कोई नशा किया हो।

सेवा के बाद स्वामीजी कमरे में विश्राम कर रहे थे। दरवाजे का पल्ला थोड़ा सा खुला हुआ था। वहीं से उन्होंने मुझे देख लिया। गम्भीर आवाज में उन्होंने पुकारा, 'शचीश!'

शचीश फौरन लपक कर कमरे में चला गया। स्वामीजी ने पूछा, 'वह कौन है?'

शचीश बोला, 'श्रीविलास है, मेरा एक मित्र।'

उन दिनों मेरा नाम प्रसिद्ध होने लगा था। एक बार अँग्रेजी में मेरा भाषण सुन कर किसी अँग्रेज विद्वान ने कहा था, 'यह आदमी ऐसी अच्छी अँग्रेजी बोलता है जैसे स्वयं—' खैर, जाने भी दीजिये, उन बातों को लिख कर मैं अपने दुश्मनों की संख्या नहीं बढ़ाना चाहता।

मैं एक धुरंधर नास्तिक हूँ और फी घंटे बीस-पचीस मील की रफ्तार से ठेठ अँग्रेजी की टमटम को बाकायदा हाँक सकता हूँ, यह बात छात्रावास से शुरू होकर छात्रों के पितृसमाज तक अच्छी तरह फैल चुकी थी।

ऐसा लगा जैसे मेरे आने से स्वामीजी खुश हुए हों। उन्होंने मुझसे मिलना चाहा। कमरे में प्रवेश करके मैंने किसी तरह एक नमस्कार का बहाना कर दिया। इस नमस्कार में मेरे दोनों हाथ खाँड़े की तरह कपाल तक उठ गये, लेकिन क्या मजाल कि सिर जरा भी झुका हो। हम लोग ताऊजी के चेले ठहरे, हमारा नमस्कार एक बिगड़े हुए धनुष की तरह अपना झुकनेवाला अंश छोड़ कर सीधा हो गया था।

चतु०—३

स्वामी जी ने इसे देख लिया और शचीश से कहा, 'जरा हुक्का तो लाओ, शचीश !'

शचीश तम्बाकू भरने बैठ गया। उधर वह चिलम पर कोयले की टिकियाँ जमाने लगा और इधर मेरी तबियत जलने लगी। कमरे में मैं कहाँ बैठूँ यह कुछ तय ही नहीं कर पा रहा था। कमरे में सिर्फ एक तख्तपोश था जिस पर स्वामीजी का बिस्तर लगा था। उसी के एक कोने पर बैठ जाना मुझे कुछ अनुचित नहीं मालूम हुआ; लेकिन मैंने ऐसा कुछ नहीं किया और दरवाजे के पास ही खड़ा रह गया। देखा, स्वामीजी को मालूम था कि मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रसिद्ध 'प्रेमचन्द रायचन्द' स्कालरशिप पानेवाला हूँ। उन्होंने कहा, 'बेटा, यह सही है कि पनडुब्बा मोती निकालने के लिए समुद्र के तल तक जा पहुँचता है, लेकिन अगर वह वहीं टिक जाय तो खैरियत नहीं। इसीलिए उसे मुक्ति के लिए ऊपर आकर दम लेना पड़ता है। अगर बचना चाहते हो, बेटा, तो अब तुम्हें विद्या के सागर की तली से निकल कर सूखी धरती पर चलना होगा। प्रेमचन्द रायचन्द स्कालरशिप तो पा चुके अब निवृत्ति का स्वाद भी तो एक बार चख लो।'

शचीश तम्बाकू भर कर हुक्का हाथ में थाम कर स्वामीजी के पैताने जमीन पर ही बैठ गया। स्वामीजी ने फौरन अपने पैर उसकी ओर फैला दिये। शचीश धीरे-धीरे उनके तलुए सहलाने लगा। यह सब देख कर मुझसे कमरे में ठहरते नहीं बना। मैं समझ गया कि खास तौर से मुझे ही चोट पहुँचाने की गरज से शचीश से हुक्का भरवाया गया है और अब पाँव दबवाये जा रहे हैं।

स्वामीजी आराम करने लगे। सभी अतिथियों ने खिचड़ी का प्रसाद लिया। शाम को पाँच बचे से जो कीर्तन शुरू हुआ सो रात के दस बजे तक यही सिलसिला चलता रहा।

रात में शचीच को अकेले पाकर मैंने कहा, 'शचीश, जन्म से लेकर

आज तक तुम मुक्ति और स्वतन्त्रता के बीच बड़े हुए हो। आज तुमने अपने को यह किस बन्धन में फँसा लिया है ? क्या ताऊजी की मृत्यु इतनी सच्ची मृत्यु हो उठेगी ?'

मेरे श्रीविलास नाम के आगे के दो अक्षरों को उलट कर शचीश कुछ तो वैसे ही मजाक में और कुछ मेरे चेहरे की विशेषता के कारण मुझे विश्री कह कर बुलाया करता था। वह बोला, 'विश्री, ताऊजी जब जीवित थे तब उन्होंने मुझे जीवन के कर्मक्षेत्र में मुक्ति दिलाई थी, जैसे छोटा बच्चा खेल के आँगन में मुक्ति पाता है। और मृत्यु के बाद उन्होंने मुझे मुक्ति दी है रस के सागर में, मानो जैसे शिशु ने माँ की गोद में मुक्ति पायी हो। दिन के समय की मुक्ति का उपभोग मैं कर चुका हूँ अब रात के समय की इस मुक्ति को कैसे छोड़ सकता हूँ ? ये दोनों ही व्यापार हमारे उन्हीं ताऊजी के कारण सम्भव हो सके हैं, इसे तुम तय समझना।'

मैंने कहा, 'तुम चाहे जो कहो; लेकिन शचीश ! हुक्का भरना और पाँव दबाना यह सब तो ताऊजी में नहीं था। मुक्ति का रूप ऐसा तो नहीं होता।'

वह बोला, 'वह धरती पर की मुक्ति थी—उस समय ताऊजी ने मेरे हाथ-पैर को कर्मक्षेत्र में संचालित कर रखा था। और यह है रस का सागर जहाँ नाव का बन्धन स्वीकार कर लेने में ही मुक्ति का रास्ता निश्चित हो पाता है। इसीलिए तो गुरुजी मुझे इस तरह चारों ओर से सेवा-टहल में अटकाये हुए हैं—उनके पाँव दबा कर ही मैं पार लग रहा हूँ।'

मैंने कहा, 'तुम्हारी ओर से यह बात सुनने में इतनी बुरी नहीं मालूम होती; लेकिन जो महाशय तुम्हारी ओर पैर फैला सकते हैं वे—'

शचीश ने कहा, 'इन्हें सेवा कराने की बिल्कुल जरूरत नहीं है, इसीलिए वे इतने सहज भाव से पाँव बढ़ा देते हैं, अगर जरूरत होती तो लज्जा का अनुभव न करते। गरज तो असल में मेरी ही है, विश्री !'

इतना सुन कर मैं समझ गया कि शचीश आज ऐसे जगत में पहुँच गया है जहाँ मेरा अस्तित्व नहीं के बराबर है। भेंट होते ही उसने मुझे जो कसकर अपनी छाती से दबा लिया था, वह मैं श्रीविलास नहीं था, वह तो था उफ! एक 'सर्वभूत'—एक आइडिया मात्र!'

इस तरह की आइडिया जातीय वस्तु शराब की तरह ही होती है। नशे की हालत में भी मतवाला आदमी इसी तरह जिस किसी को गले से लगा कर आँसू बहा सकता है, ऐसी हालत में मैं हुआ चाहे कोई दूसरा हुआ। लेकिन इस तरह छाती से लगाने पर मतवाले आदमी को चाहे जितना आनन्द मिले लेकिन मुझे तो नहीं मिलता। मैं इस तरह की भेद ज्ञान से रहित एकाकारता की बाढ़ में एक लहरमात्र नहीं बनना चाहता—मैं 'मैं' जो हूँ।

इसके अलावा यह बात भी मेरी समझ में आ गई कि यहाँ तर्क की गुञ्जाइश नहीं है। लेकिन शचीश को छोड़ कर चले जाना भी मेरे मान का कहाँ था? इसलिए शचीश के साथ मैं भी इस दल के साथ इस गाँव से उस गाँव भटकने लगा। धीरे-धीरे नशा मेरे भी सिर पर चढ़ गया—मैंने भी सबको अपनी छाती से लगाया, आँसू बरसाये, मैं भी गुरु के पाँव दबाने लगा। एक दिन हठात् न मालूम किस आवेश के क्षण में मुझे शचीश के एक ऐसे अलौकिक रूप के दर्शन हुए जो किसी देवता का ही हो सकता है, मनुष्य का नहीं।

५

हम लोगों जैसे इतने बड़े-बड़े अँगरेजीदाँ नास्तिकों को अपने दल में मिला कर स्वामी लीलानन्द तो चारों ओर प्रसिद्ध हो गये। कलकत्ते के उनके भक्तगण इस बार उनसे शहर आकर आसन जमाने के लिए बहुत अनुरोध करने लगे।

इसलिए स्वामी जी कलकत्ते आ गये।

उनके एक परम भक्त शिष्य का नाम था शिवतोष। कलकत्ते में स्वामीजी उसी के यहाँ ठहरा करते थे। बाबाजी और उनकी पूरी मंडली की सेवा करना ही शिवतोष का प्रधान धर्म था, इसमें उसे चरम सुख मिलता था।

मरते समय शिवतोष अपने कलकत्ते वाला पूरा मकान और अपनी सारी जायदाद गुरुजी के ही नाम लिख गया और अपनी निस्संतान युवती स्त्री को केवल जीवन-यापन के खर्च का अधिकार दे गया। उसकी इच्छा थी कि कालांतर में यही घर स्वामीजी के सम्प्रदाय का प्रधान तीर्थ-स्थल हो जाय। हम लोग आकर इसी घर में टिके।

जब तक हमारा दल गाँव-गाँव घूमता था तब तक किसी तरह मस्त होकर उनके साथ चलता रहा; लेकिन कलकत्ते आकर मेरे लिए इस नशे को बनाये रखना मुश्किल हो गया। इतने दिनों तक मैं मधुर भक्ति के रस के राज्य में था। वहाँ तो विश्वव्यापिनी माया के साथ चित्तव्यापी पुरुष की प्रेम-लीला चला करती थी। ग्राम्य पशुओं के हार में, किसी सघन वट की छाया में, दुपहरिया के अवकाश में और झिल्लीरव से गुञ्जायमान रात्रि के एकान्त में उसी लीला का सुर समाया हुआ था। इतने दिनों तक मैं स्वप्न में चल रहा था, उन्मुक्त आकाश के नीचे मुझे कोई बाधा नहीं थी।

लेकिन अब कलकत्ते में आते ही मेरा सिर जैसे कठिन सत्य से जा टकराया। मनुष्य की भीड़ का धक्का लगा और मेरी बहार का नशा उतर गया। किसी दिन इसी कलकत्ते के एक बोर्डिङ्ग में रात-दिन एक करके विद्या की साधना की थी। गोल तालाब के किनारे बैठ कर मित्रों के साथ देश-देश की चिन्ता की थी, राजनीतिक सभाओं में वालंटियरी की थी, पुलिस के अन्याय और अत्याचार का विरोध करने की कोशिश करते हुए जेल जाने की तैयारी की थी। यहीं इसी कलकत्ते में ताऊजी के आवाहन पर निश्चय किया था कि सामाजिक डकैती का जी-जान से मुकाबला करूँगा,

हर तरह की गुलामी का जाल तोड़ कर देश के लोगों के मन को आजाद करूँगा। इसी शहर के निवासियों के बीच अपने-पराये, जाने-अनजाने सब लोगों की गाली खा-खा कर जिस तरह पाल वाली नाव उल्टे हवा की परवाह न कर छाती फुलाये हुए चली जाती है, ठीक उसी तरह जवानी के शुरू से लेकर आज तक चला आया था। भूख-प्यास, सुख-दुख, भले-बुरे की समस्याओं के बीच भटकने वाले मनुष्यों की भीड़ से भरे उसी कलकत्ते में भक्ति के उस मधुर कोमल रस की विह्वलता को बनाये रखने की जी-तोड़ कोशिश करने लगा। हर क्षण यही विचार मन में उठता कि मैं दुर्बल हूँ, अपराध कर रहा हूँ, मेरी साधना में जोर नहीं है। उधर शचीश की तरफ देखता तो ऐसा लगता कि जैसे कलकत्ते का उसके लिए कोई अस्तित्व ही न हो। जैसे उसके लिए यह सब मात्र छाया ही छाया हो।

६

शिवतोष के घर में ही गुरुजी के साथ हम दोनों मित्र रहने लगे। हम दोनों ही उनके प्रमुख शिष्य थे। वे भी कभी हमें अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देते थे।

गुरु और गुरु-भाइयों में रात-दिन रस और रस के तत्व पर विचार-विनिमय चला करता था। उन दुरूह, दुर्गम बातों के घटाटोप को कभी-कभी अचानक भीतर से आती हुई किसी युवती के गले की स्वच्छ हँसी चीर जाती थी। किसी-किसी समय नौकरानी को पुकारती हुई किसी की आवाज सुनाई दे जाती। 'स्वामी!' भाव के जिस आकाश पर हम लोगों ने अपने मन को विभोर कर रखा था, वहाँ के लिए तो ये सब बातें तुच्छ ही समझी जाती थीं। लेकिन जब वे अचानक ही हमें छू जातीं तो सहसा ऐसा अनुभव होता जैसे अनावृष्टि के तप्त धू-धू के बीच कहीं से झमा-झम पानी बरस पड़ा हो। हम लोगों की दीवार से सटे हुए उस पार के

अदृश्य लोक से फूल की टूटी पंखुड़ियों की तरह जीवन का जरा-जरा सा परिचय हमें छू जाता था और तब मैं अनुभव करता कि रस का असली लोक तो वहाँ है जहाँ उस बामा के आँचल में घर-गिरस्ती की चाभियों का गुच्छा खनक उठता है, जहाँ रसोईघर से भोजन की भीनी-भीनी खुशबू उठा करती है, जहाँ से घर के बुहारे जाने की आवाज आती है, जहाँ सब कुछ तुच्छ होते हुए भी एकदम सत्य है! सारा मधुर-तीव्र, स्थूल-सूक्ष्म मिल कर जहाँ एकाकार हो गया है, रस का स्वर्ग वहीं है।

शिवतोष की जवान विधवा पत्नी का नाम था दामिनी। अपने नाम के अनुरूप ही वह कभी-कभी ओट में से पल भर के लिए अपनी झलक दिखा जाती थी। हाँ, हम दोनों मित्र गुरुजी के साथ इस तरह एकात्म हो गये थे कि कुछ ही दिनों बाद हमारे लिए दामिनी ओट में नहीं रह सकी।

दामिनी जैसे सचमुच सघन सावन के बादलों की दामिनी हो! उसके बाहरी राशि-राशि सौन्दर्य के अन्तर में जैसे चंचल अग्नि की ज्योति जगमगा रही हो।

शचीश ने एक जगह अपनी डायरी में लिखा है, 'ननीबाला में मैंने नारी का एक विश्व रूप देखा था—अपवित्रता के कलंक को जिस नारी ने स्वयं ही वरण किया, पापी के लिए अपना जीवन तक दे डाला, जिस नारी ने मर कर जीवन की सुधा-पात्र को और भी लबालब भर दिया। किन्तु दामिनी में नारी का एक बिलकुल भिन्न विश्व-रूप देखा। उस नारी का मृत्यु से कोई नाता नहीं, वह तो केवल जीवन-रस का ही रसिक है। वसन्त के मोहक पुष्पवन के समान वह सौरभ और लावण्य के रस से छलक उठती है। उसके लिए कुछ भी व्यर्थ नहीं। सन्यासी को घर में स्थान देते हुए वह जरा भी प्रसन्न नहीं होती। वसन्त के दक्षिण पवन के मुकाबले में वह उत्तर के शीत पवन को जरा भी महत्व नहीं देना चाहती।

यहाँ दामिनी के सम्बन्ध में थोड़ा-सा शुरू का इतिहास कह देना अनुचित नहीं होगा। जिन दिनों रेशम के व्यापार में दामिनी के पिता अन्नदा प्रसाद की तहबील मुनाफे की बाढ़ में डूबी जा रही थी उन्हीं दिनों शिवतोष के साथ उसका विवाह हुआ था। इतने दिनों शिवतोष का केवल कुल ही श्रेष्ठ था, अब उसका भाग्य भी श्रेष्ठ हो आया था। अन्नदा ने अपने जमाई के लिए कलकत्ते में एक मकान बनवा दिया और ऐसी व्यवस्था भी कर दी जिससे खाने-पीने की कोई दिक्कत उसे कभी न हो सके। इसके अलावा गहना वगैरह भी उसने कम नहीं दिया था।

शिवतोष को उन्होंने अपने आफिस में काम सिखाने की काफी कोशिश की, लेकिन उसका झुकाव स्वभाव से ही संसार की ओर नहीं था। कभी किसी ज्योतिषी ने उसे हिसाब लगाकर कह दिया था कि-किसी एक विशेष योग में बृहस्पति की कोई विशेष दृष्टि पाकर वह जीवन-मुक्त हो उठेगा। बस, उसी दिन से वह जीवन-मुक्त होने की आशा में कामिनी-कांचन और दूसरे रमणीय पदार्थों का त्याग कर बैठा। और इसी बीच लीलानन्द स्वामी ने उसे अपने प्रभाव में कर लिया।

इधर व्यापार की उल्टी हवा का झपट्टा खाकर अन्नदा की फूले हुए पालवाली नाव बिलकुल औंधी हो गई। यहाँ तक कि घर-द्वार तक बिकने की नौबत आ गई, भरपेट अन्न तक जुट पाना मुश्किल हो गया।

एक दिन शिवतोष शाम के समय अन्दर आकर अपनी स्त्री से बोला, 'स्वामीजी आये हैं, तुम्हें बुला रहे हैं। कुछ उपदेश देंगे।'

दामिनी बोली, 'नहीं, इस वक्त मैं नहीं जा सकती, मुझे फुरसत नहीं है।'

'फुरसत नहीं है! यह कैसी बात कहती हो?' शिवतोष ने पास आ कर देखा—दामिनी अँधेरे में बैठी सन्दूक खोल कर अपना गहना वगैरह सँभाल रही है। उसने पूछा, 'यह क्या कर रही हो?'

'अपने गहने वगैरह सँभाल रही हूँ।'

'तो क्या इसीलिए वक्त नहीं है ? हाँ, ठीक कहती हो !'

दूसरे दिन जब दामिनी ने अपना लोहे का सन्दूक खोला तो उसमें से गहने गायब थे। उसने पति से पूछा, 'मेरे गहने ?'

पति ने कहा, 'उन्हें तो तुमने अपने गुरु को अर्पित कर दिया है। इसीलिए तो उन्होंने तुम्हें ठीक उसी समय बुलाया था। वे अन्तर्यामी जो ठहरे ! उन्होंने तुम्हारा सोने का लोभ दूर कर दिया है।'

दामिनी ने आगबबूला होकर कहा, 'मेरे गहने दे दो।'

पति ने पूछा, 'क्यों, क्या करोगी ?'

वह बोली, 'वह मेरे पिता का दान है, उसे अपने पिता को दूँगी।'

शिवतोष बोला, 'वह दान उससे अच्छी जगह पहुँचा है। संसारी जीवों का पेट न भर कर वह भक्तों की सेवा कर रहा है।'

और फिर इसी तरह भक्ति की दस्युवृत्ति का सिलसिला शुरू हुआ। दामिनी के चित्त से सब तरह की कामना-वासना का भूत भगाने के लिए पग-पग पर ओझा का उत्पात शुरू हुआ। जिस समय दामिनी के पिता और उसके छोटे-छोटे भाई उपवास करके भूखों मर रहे थे उस समय दामिनी के घर प्रति दिन साठ-सत्तर भक्तों को प्रसाद मिलता था और सारा भोजन दामिनी को खुद ही तैयार करना पड़ता था। दामिनी जान-बूझ कर तरकारी में नमक नहीं डालती और दूध जला देती थी। लेकिन फिर भी उसका छुटकारा नहीं था।

इन्हीं दिनों उसका पति मरने के समय अपनी पत्नी को भक्तिहीनता का अन्तिम दंड दे गया—उसने अपनी सारी सम्पत्ति के साथ अपनी पत्नी को गुरुजी के हाथ में सौंप दिया।

७

घर में लगातार भक्ति-रस की लहरें उमड़ रही हैं। कितनी दूर-दूर से न मालूम कितने लोग आकर गुरुजी की शरण ले रहे हैं। और

इधर स्थिति यह है कि दामिनी हालाँकि अनायास ही गुरुजी के समीप पहुँच गई है लेकिन फिर भी जैसे वह दुर्लभ सौभाग्य को दिन-रात अपमानित करके अपने से दूर ही ठेलती रहती थी।

गुरुजी जिस दिन उसे विशेष रूप से उपदेश देने के लिए बुलाते थे उस दिन वह कहला देती कि मेरे सिर में दर्द हो रहा है। जिस दिन शाम के आयोजन में कोई त्रुटि निकाल कर गुरुजी दामिनी से सवाल करते तो वह कह देती कि मैं थियेटर देखने गई थी। यह जवाब सच्चा नहीं होता था लेकिन कड़ुवा जरूर होता था और दामिनी के लिए यही संतोष का विषय था। भक्त नारियों की टोली आकर दामिनी का यह कांड देखकर आश्चर्य से अपने गालों पर हाथ रख कर बैठ जाती। एक तो वैसे ही उसकी वेश-भूषा विधवाओं जैसी नहीं होती थी, फिर वह गुरु-जी के उपदेश को मानने से इनकार कर देती थी। इसके अलावा इतने बड़े महापुरुष के इतने निकट सम्पर्क में आने पर तन और मन में जो एक संयम, शुचिता आ जाती है, उसका तो दामिनी में कहीं कोई चिन्ह तक नहीं था! सभी भक्तिनें कहतीं—धन्य है! औरतें तो बहुत-बहुत देखी हैं लेकिन ऐसी औरत तो सात जनम में नहीं देखी थी।

सुन कर स्वामी जी हँस देते थे। वे कहते, 'जिसमें ताकत है भगवान को उसी के साथ लड़ाई करना भाता है। जिस दिन वह हार मानेगी उस दिन उसके मुँह से आधी बात भी नहीं निकलेगी।'

वे उसे और भी अधिक क्षमा करते हुए चलने लगे। और इस तरह की क्षमा दामिनी को और भी अधिक असह्य होने लगी। यह तो जैसे शासन का ही दूसरा नाम था। गुरुजी दामिनी के साथ अपने व्यवहार में कुछ अधिक मधुर भाव प्रकट करते थे। एक दिन अचानक सुनने में आया कि दामिनी अपनी किसी सहेली के साथ स्वामी के इस कहने की नकल करके हँस रही है!

फिर भी उन्होंने कहा, 'जो असम्भव है वह भी सम्भव हो कर रहेगा

और इसी बात को वे सिद्ध करने के लिए दामिनी को विधाता ने भेजा है, इसमें उस बेचारे का तो कोई दोष नहीं है।'

हम लोगों ने शुरू-शुरू में दामिनी की यही हालत देखी। और फिर इसके बाद अघट घटना शुरू हुआ।......

अधिक लिखने की इच्छा नहीं होती, लिखना भी कठिन है। जीवन में पद की ओट से अदृश्य हाथों से जो जाल बुना जाता है उसका नक्शा किसी शास्त्र की आज्ञा के अनुसार नहीं होता और न फरमायशी ही होता है। इसीलिए तो भीतर-बाहर सब कुछ इतना अशोभन हो उठता है और मन में इतनी चोटें सहनी पड़ती हैं कि रोना आ जाता है।

दामिनी के विद्रोह का कर्कश आवरण न जाने किस सूर्योदय के आलोक से एकदम बिखर कर तार-तार हो गया और आत्मनिवेदन के पुष्प ने आकाश की ओर अपना ओस से भींगा मुँह ऊपर उठा दिया। अब दामिनी की सेवा ऐसी सहज सुन्दर और मधुर हो उठी मानो, भक्त की साधना के लिए भक्त-वत्सल को कोई वरदान प्राप्त हो गया हो।

इसी भाँति दामिनी अपनी सारी चंचलता छोड़ कर अचानक बिलकुल अचंचल सौदामिनी हो उठी और शचीश उसकी शोभा ही देखता रह गया। लेकिन मेरा विचार है कि शचीश ने केवल शोभा को ही देखी, दामिनी को नहीं देखा!

शचीश के सोने के कमरे में चीनी मिट्टी के एक पाट पर स्वामी लीलानन्द का एक ध्यानस्थ मुद्रा में फोटोग्राफ था। एक दिन शचीश ने देखा कि वह टूट कर चूर-चूर हुआ पड़ा है। उसने समझा कि यह काम शायद उसकी पालतू बिल्ली के उपद्रव से हुआ है। लेकिन बीच-बीच में ऐसे उत्पात भी दिखाई देने लगे जो पालतू बिल्ली तो क्या जंगली बिल्ली से भी सम्भव नहीं थे।

आकाश में जैसे चारों ओर एक चंचल हवा बहने लगी! एक अदृश्य विद्युत भीतर ही भीतर खेलने लगी। दूसरों की बात तो मैं नहीं

जानता लेकिन एक अज्ञात व्यथा मेरे मन में टीस मारने लगी। मैं कभी-कभी सोचता कि रस की यह चौबीसों घंटे की यह तरंग मेरे अनुकूल नहीं है। अगर हो सके तो यहाँ से भाग निकलूँ। चमारों के बच्चों के साथ जो रसशून्य वर्णमाला का प्रसंग चला करता था वही मेरे लिए बहुत उपयुक्त था।

एक दिन शीत काल की दुपहरिया में जब गुरुजी आराम कर रहे थे और भक्त लोग थक कर लेटे हुए थे, शचीश किसी कारण असमय में ही अपने कमरे में सोने गया। लेकिन चौंक कर वह चौखट के पास ही खड़ा रह गया। उसने देखा कि दामिनी अपने लम्बे बाल बिखराये हुए जमीन पर लेटी पड़ी है और अपना माथा ठोक-ठोक कर कह रही थी 'पत्थर, ओ पत्थर! अरे दया करो मुझ पर जान ले लो मेरी!'

भय के मारे शचीश की देह काँप उठी। वह उलटे पैरों वहाँ से भाग आया।

८

गुरुजी साल भर में एक बार किसी दुर्गम स्थान में निर्जन भ्रमण के लिए जाया करते थे। माघ मास में ही वे यात्रा के लिए निकलते थे। माघ आ पहुँचा। शचीश बोला, 'मैं भी आपके साथ जाऊँगा।'

मैंने भी कहा, 'मैं भी चलूँगा।'

रस की उत्तेजना की वजह से मैं हड्डी के भीतर तक जीर्ण-शीर्ण हो चुका था। कुछ दिन कहीं घूम-फिर आने और एकान्त वास की मुझे बड़ी भारी जरूरत थी।

स्वामीजी ने दामिनी को बुलाकर कहा, 'माँ, मैं तो भ्रमण के लिए निकलूँगा। जैसे तुम ऐसे मौके पर अपनी मौसी के यहाँ जाकर रहा करती थी, वैसे ही इस बार भी मैंने इन्तजाम कर दिया है।'

दामिनी बोली, 'मैं साथ जाऊँगी।'

स्वामीजी ने कहा, 'भला तुम चल भी सकोगी? रास्ता तो बहुत ही बीहड़ है।'

दामिनी बोली, 'हाँ, चल सकूँगी। मेरे लिए आपको कोई फिक्र नहीं करनी होगी।'

स्वामीजी दामिनी की यह निष्ठा देख कर बहुत प्रसन्न हुए। पहले तो दामिनी के लिए जैसे यही समय छुट्टी का होता था। वह साल भर इसी मौके का इन्तजार किया करती थी। स्वामीजी इस अलौकिक परिवर्तन को देखकर चकित रह गये! भागवत् के रसायन से पत्थर भी किस तरह मक्खन की तरह कोमल हो जाते हैं!

तो, दामिनी किसी भी तरह नहीं मानी और उनके साथ ही गई।

६

उस दिन लगभग छः घंटे तक धूप में चलने के बाद हम लोग जिस जगह आ पहुँचे थे वह जमीन का समुद्र में निकला हुआ अन्तरीप जैसा एक स्थान था। चारों ओर से बिल्कुल स्तब्ध और एकान्त। नारियल के जंगल से आने वाली हवा में उस शान्तप्राय सागर का अलस कल्लोल घुला-मिला जाता था। उस अन्तरीप को देख कर ठीक ऐसा लगा जैसे घोर नींद में पृथ्वी का एक थका हुआ हाथ अलस भाव से समुद्र की छाती पर आ गिरा हो। उस हाथ की हथेली पर एक गहरे हरे रंग की नीलाभ पहाड़ी है, छोटी-सी। इस पहाड़ी पर बहुत पुरानी खुदी हुई एक गुफा है। यह बौद्ध गुफा है या हिन्दू, उस पर खुदी हुई मूर्तियाँ बुद्ध की हैं या वासुदेव की और उसकी शिल्पकला पर यूनान का प्रभाव है या नहीं, आदि प्रश्नों पर विद्वानों के बीच बड़ा वादविवाद चल चुका था।

तय तो यह हुआ था कि हम लोग गुफा देख कर धर्मशाला की ओर लौट आयेंगे। लेकिन यह नहीं हो सका। दिन चुक आया, कृष्ण

पक्ष की द्वादशी थी। गुरुजी ने कहा, 'आज की रात इसी गुफा में काटनी होगी।'

हम तीनों सागर-तट पर वन की श्यामल छाया में बालू पर बैठ गये। आसन्न अन्धकार के सम्मुख दिवस के अन्तिम प्रणाम की भाँति समुद्र के पश्चिम प्रान्त में सूर्य नत हो आया। गुरुजी ने गान साधा—पुराने कवि का एक गान, किसी आधुनिक कवि का गान उन्हें पसन्द नहीं था।

पथ पर चलते हुई भेंट
साथ तुम्हारे दिन के अंत में,
तुम्हें देखने जाकर दिन की किरण
खो गई एक निमिष में।

स्वामीजी का गान उस दिन खूब जमा। दामिनी के उमड़ते हुए आँसू रोके नहीं रुके। फिर स्वामी जी ने अंतरा सँभाला—

पाऊँ दर्शन या कि न पाऊँ,
शोक नहीं कुछ इसके हित,
पर, रुको एक क्षण, चरण तुम्हारे
ढँक लूँ अपने लुंठित-कुंचित केश में!

जब स्वामी जी रुक गये, तब आकाश में और सागर में छायी हुई सन्ध्या की स्तब्धता नीरव सुर के रस में पगी हुई स्वर्णाभा के रूप में छलक आई। दामिनी ने न जाने किसके उद्देश्य से माथा टेक कर प्रणाम किया—उसने बहुत देर तक सिर नहीं उठाया, उसकी केश-राशि बिखर कर धरती पर लोटने लगी।

१०

शचीश की डायरी में लिखा है—

'उस गुफा के भीतर बहुत से कमरे थे। उन्ही में से एक में मैं कम्बल बिछा कर लेट गया।

'गुफा का अँधेरा जैसे किसी काले जानवर की तरह लग रहा था। उसकी भींगी साँस जैसे मेरे शरीर को छू रही थी। मुझे ऐसा लगा जैसे वह किसी आदिम काल की प्रथम सृष्टि का कोई प्रथम जन्तु हो। जैसे उसके आँख नहीं, कान नहीं, सिर्फ एक भयंकर भूख है। वह अनन्त काल से इसी गुफा में बन्दी है। उसके मन भी नहीं है, वह कुछ नहीं जानता, यदि है तो केवल व्यथा मात्र—जैसे वह निशब्द रोया करता है।

'थकान ने किसी भारी बोझ की तरह मेरे शरीर को दबा रखा था, लेकिन फिर भी नींद नहीं आ पा रही थी। उसी समय न मालूम कौन-सा पक्षी, शायद चमगादड़ रहा हो, भीतर से बाहर की ओर या बाहर से भीतर की ओर पंख फड़फड़ाता हुआ एक अँधेरे कोने की ओर चला गया। देह पर उसकी हवा का स्पर्श हुआ और जैसे रोंगटे खड़े हो गये।

'सोचा बाहर जाकर सो जाऊँ। लेकिन गुफा का दरवाजा किस ओर है, यह कुछ समझ में ही नहीं आया। खूब बच कर चलने की कोशिश की तो एक ओर सिर टकरा गया, फिर दूसरी ओर बढ़ने पर भी सिर टकरा गया। फिर कोशिश की तो किसी गढ़े में जा फँसा जहाँ गुफा की दरारों से भरा हुआ पानी जमा हो गया था।

फिर लौट कर मैं अपने कम्बल पर आ लेटा। ऐसा लगा जैसे उस आदिम जन्तु ने भीतर से मुझे खूब जकड़ कर कस लिया है। किसी भी तरह बाहर निकल पाना सम्भव नहीं। वह जैसे एक काली क्षुधा है जो तिल-तिल करके मुझे चाटती रहेगी और धीरे-धीरे नष्ट कर डालेगी।

नींद आ जाय तो जान बचे। मेरी जागरित चैतन्यता इतने बड़े सत्यानासी अन्धकार के आलिंगन को नहीं सह सकी, केवल मृत्यु ही उसे सह सकती है।

मालूम नहीं कितनी देर बाद नींद तो नहीं बल्कि बेहोशी की एक झीनी चादर ने मेरी चेतना को ढँक लिया। उसी तन्द्रा में मुझे

अपने पाँवों को पहली बार किसी की साँस जैसा स्पर्श अनुभव हुआ। भय के मारे मेरा सारा शरीर जैसे बर्फ हो गया!......फिर वही आदिम जन्तु!

फिर न मालूम किसने कस कर मेरे पैर पकड़ लिये। मैंने पहले तो सोचा कि कोई जङ्गली जानवर है। लेकिन उसकी देह पर तो रोयें होते हैं, इसके तो रोयें भी नहीं! फिर मेरा शरीर किसी गहरी आशंका से सिकुड़ गया। लगा जैसे साँप जैसा कोई ठंडा-ठंडा गुदगुदा-सा जानवर है, जिसे मैं पहचानता भी नहीं। कुछ पता भी नहीं कि इसका सिर कैसा है, धड़ कैसा है, पूँछ कैसी है। कैसे यह किसी को निगलता है, पता नहीं। इस तरह यह चिकना-चिकना है, न मालूम कैसा वीभत्स और घिनौना है—जैसे उद्दाम क्षुधा की मूर्ति हो!

भय और घृणा से मेरा गला रुँध गया। मैं उसे दोनों पैरों से परे ठेलने लगा। ऐसा लगा जैसे उसने मेरे पैरों से ही अपना मुँह सटा रखा है—उसकी साँस का स्पर्श बार-बार मिल रहा था। न मालूम यह मुँह कैसा होगा! मैं बेचैन होकर उससे छुटकारा पाने के लिए अपने पैर फटकारने लगा!......

अन्त में तन्द्रा टूटी। पहले ऐसा लगा था कि इसके शरीर पर रोयें नहीं हैं और अब लगा कि मेरे पैरों पर किसी के बाल बिखरे पड़े हैं। मैं छटपटा कर उठ बैठा।

उसी समय न मालूम कौन उस अँधेरे से उठ कर चला गया। फिर न मालूम कैसी नीरव ध्वनि सुनाई पड़ी। क्या वह किसी की दबी हुई रुलाई का स्वर था?'

दामिनी

१

हम लोग अपने भ्रमण से वापस आ गये। गाँव के एक मन्दिर के पास ही किसी शिष्य के मकान की दूसरी मंजिल में हमारा डेरा पड़ा।

गुफा से लौटने के बाद से दामिनी अक्सर दिखाई नहीं देती थी। वह हमारे लिए रसोई जरूर तैयार कर देती थी, लेकिन जहाँ तक होता था हमारी नजरों के सामने नहीं आती थी। उसने मुहल्ले की स्त्रियों से मेलजोल बढ़ा लिया है सारा दिन उन्हीं के यहाँ बैठते-उठते कट जाता है।

गुरुजी कुछ खीज उठे। सोचने लगे कि धरती की तरफ ही दामिनी का खिंचाव अधिक है आकाश की ओर नहीं। कुछ दिनों के लिए वह हम लोगों की सेवा-टहल में वैसे ही लग गई थी जैसे लोग मूर्ति की पूजा करते हैं। अब उसमें थकावट के लक्षण साफ दिखाई देते थे। भूलें बराबर होतीं, कामकाज में उसका पहले की तरह मन नहीं लगता।

गुरुजी अब फिर उससे मन ही मन डरने लगे। दामिनी की भौंहों के बीच विद्रोह की एक काली रेखा गहरी होती जाती है और उसके मिजाज की हवा न जाने कैसी बहने लगी है। उसका शिथिल और ढीला

चतु०—४

जूड़ा उद्धत भाव से कंधे की तरफ झूलता रहता है। ओंठों में, आँखों के कोनों में हाथों को हिलाने में—रह-रह कर किसी बड़े विद्रोह का इशारा मिल जाता है।

गुरुजी ने फिर से अपने भजन-कीर्तन में और भी मन लगा दिया। उन्होंने सोचा, जैसे उड़ा हुआ भौंरा मीठी खुशबू से खुद ही चुपचाप लौट आयेगा। हेमन्त ऋतु के छोटे-छोटे दिन भजन-कीर्तन की मदिरा में उफनने लगे।

लेकिन कहाँ! दामिनी फिर भी पकड़ में नहीं आई। गुरुजी ने एक दिन उसके बारे में हँसते हुए कहा, 'भगवान आखेट के लिए निकले हैं। हरिणी लुक-छिप रही है और इस तरह शिकार का आनन्द और भी बढ़ाये दे रही है। लेकिन तीर तो छाती में सहना ही होगा।'

शुरू-शुरू में जब दामिनी के साथ हम लोगों का परिचय हुआ उस समय भक्त-मंडली में उसका आना-जाना शुरू नहीं हुआ था। और तब इस बात की ओर हमारा ध्यान भी इतना नहीं जाता था। लेकिन अब तो जैसे यह बात हम लोगों के लिए बड़ी महत्व की हो उठी कि दामिनी हम लोगों के सामने नहीं आती। उसका न दिखाई देना ही तो हम लोगों को तूफानी हवा की तरह चारों ओर झकझोरने लगा। गुरुजी ने उसकी अनुपस्थिति को अहंकार कह कर स्वीकार कर लिया। और यही बात उसके अहंकार को सबसे अधिक चोट पहुँचाने लगी। और मैं? मेरी बात भला क्या हो सकती है?

गुरुजी ने एक दिन हिम्मत किया और यथा सम्भव मीठे स्वर में कहा, 'दामिनी आज तीसरे पहर तुम्हें थोड़ी देर के लिए फुरसत होगी?'

दामिनी बोली, 'नहीं!'

'भला क्यों?'

'मुहल्ले में हल्दी कूटने जाऊँगी।'

'हल्दी कूटने ! भला यह क्यों ?'

'नन्दी लोगों के यहाँ शादी है।'

'तो क्या जाना बिलकुल ही जरूरी—'

'हाँ, मैंने वादा कर लिया है।'

और कुछ न कहकर दामिनी तेज हवा के झोंके की तरह वहाँ से तुरन्त चली गई। शचीश वहीं बैठा था, वह हैरान रह गया। न मालूम कितने ही धनी-मानी और गुणी विद्वान उसके गुरु के पास आते हैं और भक्ति से सिर नवाया करते हैं और यह जरा-सी छोकरी—भला किस बूते पर उसका यह दिमाग है ?

एक दिन और दामिनी घर पर ही थी। उस दिन गुरुजी ने खास तौर से दार्शनिक तत्त्व की कोई बड़ी गम्भीर बात उठाई। कुछ देर बाद उन्होंने हमारी ओर देखा तो हमारे चेहरे पर कुछ खालीपन-सा नजर आया। समझ गये कि हम लोग अन्यमनस्क हैं। पीछे की ओर मुड़ कर देखा तो मालूम हुआ कि दामिनी जहाँ बैठी कपड़े में बटन टाँक रही थी, वहाँ से अब वह गायब हो चुकी थी। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि हम लोग दामिनी के जाने की बात ही सोच रहे थे। उनके मन में बार-बार यही बात उठने लगी कि दामिनी ने सुना नहीं, दामिनी ने सुना नही। इसीलिए वे जो बात कह रहे थे उसका सूत्र ही खो बैठे। कुछ देर बाद उनसे नहीं रहा गया। दामिनी के पास जाकर बोले, 'दामिनी यहाँ अकेली बैठी क्या कर रही हो ? उस कमरे में नहीं आओगी ?'

वह बोली, 'नहीं, मुझे काम है।'

गुरुजी ने झाँक कर देखा एक पिंजड़े में एक चील बन्द है। दो दिन हुए न जाने कैसे वह तार के खम्भे से टकरा कर जमीन पर आ गिरी थी। कौओं के दल से उसका उद्धार करके दामिनी उसे अपने घर ले आयी थी, और तब से उसकी तीमारदारी में लगी रहती थी।

यह तो हुआ चील का किस्सा। उसके बाद दामिनी ने कुत्ते का

एक पिल्ला जुटा लिया। जैसा उसका रूप था वैसी ही उसकी नस्ल भी थी। रस-भंग की तो जैसे दूसरी मूर्ति ही समझ लीजिये। करताल की जरा-सी आवाज सुनते ही आर्त स्वर में वह विधाता के दरबार में अपनी फरियाद भेजने लगता था। यह फरियाद विधाता नहीं सुन पाते यह खैरियत है, लेकिन जो लोग सुनते हैं उनसे तो धीरज नहीं रखते बन पाता न।

एक दिन की बात है दामिनी छत के एक कोने में टूटी हाँडी में कुछ पौधे वगैरह रोपने में लगी थी कि तभी शचीश ने आकर उससे पूछा, 'आजकल तुमने वहाँ जाना एकदम से क्यों छोड़ दिया?'

'कहाँ?'

'गुरुजी के पास।'

'क्यों, मेरे बिना क्या तुम लोगों का कोई मतलब अटका पड़ा है?'

'नहीं, मतलब हम लोगों का तो नहीं, लेकिन तुम्हारा तो है।'

दामिनी भभक उठी, 'कुछ नहीं है, कुछ नहीं है!'

शचीश चकित होकर उसकी ओर देखता रह गया। फिर कुछ देर बाद बोला, 'देखो, तुम्हारा मन अशांत हो गया है, अगर शांति चाहती हो तो—'

'तुम लोग भला मुझे शांति दोगे? रात-दिन मन में लहरें उठा-उठा कर अपने को पागल किये हुए हो, तुम्हें शांति कहाँ। हाथ जोड़ती हूँ, मुझ पर दया करो! मैं शांत ही थी और शांति से ही रहना चाहती हूँ।'

शचीश बोला, 'ऊपर जो लहरें तुम्हें दिखाई देती हैं वे तो हैं ही लेकिन भीतर तक पहुँचने पर मालूम होगा कि वहाँ सब कुछ शान्त है।'

दामिनी हाथ जोड़कर बोली, 'दुहाई है, मुझसे और भीतर तक पहुँचने के लिए न कहना। तुम सब अगर मेरे कल्याण की आस छोड़ दो तो शायद मैं बच जाऊँ।'

२

मुझ में इतनी योग्यता नहीं कि मैं नारी-हृदय का रहस्य जान सकूँ। बिलकुल ऊपर-ऊपर से और बाहर-बाहर ही जो कुछ देखने का सौभाग्य मिला है, उससे मेरा यही विश्वास हुआ है कि वे लोग जहाँ दुख पाती हैं वहीं हृदय दान करने के लिए प्रस्तुत रहती हैं। वे ऐसे पशु के लिए भी अपनी वरणमाला गूँथ सकती हैं, जो उस माला को कामना के पंक में कुचल कर नष्ट-भ्रष्ट कर सकता है। और यदि वे वैसा न कर सकीं तो फिर वे ऐसे किसी के कंठ की ओर बढ़ती हैं जहाँ तक उनकी माला पहुँच ही नहीं सकती।—वे ऐसे व्यक्ति की ओर लक्ष्य करती हैं जो भाव की सूक्ष्मता में घुल-घुल कर मानों मिट ही गया हो। स्वयंवरा होने पर नारी उन्हीं का त्याग करती है जो मेरी तरह मझोले कद के आदमी होते हैं, जो स्थूल और सूक्ष्म दोनों से मिल कर बने हैं, जो नारी को नारी के रूप में जानते हैं।—यानी जो इतना जानते हैं कि वह मिट्टी सान कर उसी से गढ़ी हुई एक खेल की गुड़िया नहीं है न सुरों से बनी हुई वीणा की झंकार मात्र है। वे हमें त्याग देती हैं क्योंकि हममें न तो लुब्ध लालसा का ही दुर्दम मोह है और न विभोर भावुकता की झीनी रंगीन माया ही है। हम लोग प्रवृत्ति के कठिन आवेग में उन्हें तोड़ कर फेंक भी नहीं पाते और भाव के ताप से गला कर अपनी कल्पना के साँचे में ढालना भी नहीं जानते। वे जो कुछ हैं हम उन्हें उसी रूप में जानते हैं, इसीलिए वे हमें पसन्द तो करती हैं लेकिन तब भी प्यार नहीं कर पातीं। असल में कहा जाय तो हम लोग ही उनके अवलंब हैं—हमारी निष्ठा पर वे हमेशा निर्भर कर सकती हैं। हमारा आत्मोत्सर्ग इतना सहज होता है कि वे भूल ही जाती हैं कि उसका कोई मूल्य भी हो सकता है। उनके हाथों हम सिर्फ इतनी ही बख्शीश पाते हैं कि जरूरत पड़ने पर वे हमें अपने काम में ला सकती हैं। और शायद श्रद्धा भी करती हैं हम पर। लेकिन जाने भी दीजिए ये सब क्षोभ भरी बातें हैं। बहुत सम्भव है कि

ये सब सच भी न हों। और भी खूब सम्भव है कि हम जहाँ तक कुछ भी प्रतिदान नहीं पाते, वहीं हमारी सबसे बड़ी जीत भी है।—कम से कम ऐसा सोच कर हम अपने को सान्त्वना तो दे लेते हैं।

दामिनी गुरूजी की छाया भी बचा कर चलती है, क्योंकि उनके प्रति मन में एक गहरा असंतोष भरा है। वह शचीश से भी यथा सम्भव कन्नी काट कर ही चलती है, क्योंकि उसके प्रति उसका भाव ठीक इसके विपरीत है। अब पास में मैं ही एक आदमी बचा, जिसे लेकर कोई राजी-नाराजी का झमेला नहीं खड़ा हो सकता।

इसीलिए दामिनी मेरे आगे अपनी नई-पुरानी बातें, मुहल्ले में कहाँ क्या देखा, क्या हुआ वगैरह-वगैरह सब कुछ कह जाती है। दूसरी मंजिल वाले मेरे कमरे के सामने जो जरा-सी ढँकी हुई छत है वहीं बैठ कर वह सरौते से सुपारी काटते-काटते सब कुछ सुना जाती है। लेकिन यह मामूली-सी बात भी शचीश की भाव-विह्वल आँखों में जा चुभेगी, यह मैं नहीं सोच सकता था। हो सकता है यह सब नितान्त साधारण न भी हो लेकिन मेरा विचार था कि शचीश इस समय जिस भावलोक का निवासी है वहाँ इस तरह की बात का कोई महत्त्व नहीं हो सकता। वहाँ तो आह्लादायिनी संधिनी और योगमाया जो कुछ घटा रही है वही सब कुछ है, वही एक लीला है। वहाँ जिसने यमुना तीरे, धीर समीरे मुरलिया की तान सुन ली है, वह उसके बाद भी अपने चारों ओर के अनित्य व्यापार को अपनी आँखों से देख सकेगा या अपने कानों से सुन सकेगा, इसकी मुझे कल्पना तक नहीं थी। कम से कम यात्रा से लौटने के पहले तो शचीश के आँख, कान आज की तुलना में कहीं अधिक बन्द थे।

थोड़ी चूक मेरी ओर से भी हो गई थी। मैंने भी रस चर्चा के कार्य-क्रमों से बीच-बीच में अनुपस्थित रहना शुरू कर दिया। मेरी अनुपस्थिति के ये अवसर शचीश की नजर में भी पड़ने लगे। एक दिन उसने आकर देखा कि ग्वाले के यहाँ से दूध खरीद कर दामिनी के पाले हुए नेवले

को पिलाने के लिए मैं उसके पीछे-पीछे भागा जा रहा हूँ। भजन-कीर्तन में सम्मिलित न होने के लिए इस बहाने को संतोषजनक नहीं माना जा सकता था। इसके अलावा क्षुधा निवृत्ति के काम का भार खुद नेवले पर ही छोड़ देने से जीव-दया के वैष्णव नियम में भी किसी बहुत बड़े व्यवघात के होने की सम्भावना भी नहीं थी। बल्कि कीर्तन में शरीक होकर मैं हरिनाम में अपनी रुचि और निष्ठा का ही परिचय देता। इसलिए ऐसे मौके पर शचीश को देख कर हतप्रभ और अप्रस्तुत होना ही पड़ा। मैंने दूध का पात्र वहीं रख कर अपना आत्म-सम्मान बचाने के ख्याल से वहाँ से चुपचाप खिसक जाने की कोशिश की।

लेकिन दामिनी के व्यवहार ने तो चकित ही कर दिया। बिना जरा भी घबराये वह बोली, 'कहाँ चल दिये, श्रीविलास बाबू ?'

मैंने सिर खुजलाते हुए कहा, 'एक बार जरा......'

दामिनी बोली, 'उन लोगों का भजन-कीर्तन अब तक समाप्त हो गया होगा। बैठिये भी।'

यह सुन कर मेरे तो कान गरम हो आये।

वह कहने लगी, 'इस नेवले के कारण मैं तो बड़ी परेशान हूँ। गई रात वह मुहल्ले के मुसलमानों के घर से एक मुर्गी चुरा लाया। अब इसे छुट्टा नहीं रखा जा सकता। इसके लिए एक बड़ी टोकरी ला दीजिए। इसको उसके नीचे कैद करके रखना होगा।'

नेवले को दूध पिलाने और उसके लिए खोज कर एक खास तरह की टोकरी लाने की बात कह कर दामिनी ने श्रीविलास बाबू के आने की सफाई शचीश के सामने देने की पूरी कोशिश की। जिस दिन गुरुजी ने मेरे सामने विशेष रूप से शचीश को हुक्का भरने का आदेश दिया था उस दिन का दृश्य याद आ गया। आखिर बात तो एक ही है।

शचीश कुछ न कह कर वहाँ से तेजी से चला गया। मैंने दामिनी की ओर एक नजर देखा तो पाया कि वह उसी ओर देख रही थी जिस

ओर शचीश गया था। उस ओर इस तरह देख रही थी जैसे उसकी आँखों में बिजली कौंध रही हो, जैसे वह मन ही मन क्रूर हँसी हँस रही हो।

उसने क्या समझा-बूझा यह तो वही जाने, लेकिन इसका नतीजा यह हुआ कि जरा-जरा सी बात के बहाने वह प्रायः मुझे बुला लेने लगी। इतना ही नहीं किसी-किसी दिन वह अपने हाथों मिठाई वगैरह बना कर खास तौर से मुझे ही खिलाने लगी। ऐसे मौके पर जरा मैं घुमा-फिरा कर कहता, 'जरा शचीश भैया को भी......'

वह कहती, 'उन्हें खाने के लिए बुलाना झूठमूठ में परेशान करना ही होगा।'

—और शचीश बीच में आकर देख भी गया कि मैं खाने बैठ जाता हूँ।

तीनों में मेरी ही हालत सबसे अधिक शोचनीय है। अन्य दो जो इस नाटक के प्रधान पात्र हैं, उनका अभिनय शुरू से आखीर तक आत्मगत ही है। बीच में केवल मैं ही हूँ जो इतना खुला हुआ हूँ, इसका कारण यह है कि मैं इनके बीच नितान्त गौण हूँ। इसके फलस्वरूप कभी-कभी मुझे अपने पर खीज भी आ जाती है। कुछ अजीब मुश्किल में फँस गया हूँ।

३

कुछ दिनों तक शचीश और भी अधिक जोश के साथ करताल बजा-बजा कर कीर्तन करता फिरा। फिर इसके बाद एक दिन मेरे पास आकर बोला, 'हम लोगों के बीच दामिनी का रहना नहीं हो सकता।'

मैंने पूछा, 'भला क्यों?'

वह बोला, 'प्रकृति का संसर्ग हमें हमेशा के लिए छोड़ देना होगा!'

मैंने कहा, 'अगर ऐसा ही है तो समझना चाहिये कि हमारी साधना में कहीं कोई भूल है।'

शचीश मेरे चेहरे पर अपनी नजर जमा कर जिज्ञासु की तरह देखता रह गया।

मैंने कहा, 'जिसे तुम प्रकृति कहते हो, वह तो एक प्रकृत पदार्थ है। तुम उसे शायद अपने से दूर हटा सकते हो, लेकिन संसार से उसे दूर नहीं मिटाया जा सकता। इसलिए अगर तुम इस तरह साधना करते रहो जैसे वह वस्तु संसार में नहीं है तब तो यह अपने को भुलावा देना ही होगा। किसी दिन यह प्रवंचना इस तरह पकड़ में आयेगी कि फिर भागने तक की राह नहीं मिलेगी।'

शचीश ने कहा, 'यह न्यायशास्त्र का तर्क अपने पास रखो, मैं तो काम की बात कह रहा हूँ। स्पष्ट ही दीख रहा है कि स्त्रियाँ प्रकृति की दूती हैं। प्रकृति की आज्ञा पालन करने के लिए वे तरह-तरह के साज-सिंगार से मन को लुभाने की चेष्टा करती हैं। हमारी चेतना पर अगर वे पर्दा न डाल पायें तो भला वे हम पर शासन ही कैसे कर सकेंगी? इसीलिए अपनी चेतना को मुक्त रखने के लिए प्रकृति की इन तरह-तरह की दूतियों से जैसे भी हो बच कर चलना चाहिये।'

मैं और भी न मालूम क्या कहने जा रहा था कि मुझे रोक कर शचीश बोला, 'भाई, विश्री, तुम प्रकृति की माया को देख नहीं पा रहे हो क्योंकि तुम उसकी माया के जाल में फँसे हुए जो हो! जिस सुन्दर रूप के द्वारा आज वह तुम्हें बहलाये हुए है, अपना मतलब निकल जाने पर वह अपने इस कृत्रिम चेहरे को हटा लेगी। जिस तृष्णा के चश्मे के कारण आज वह रूप संसार का सबसे बड़ा सत्य मालूम हो रहा है, समय पूरा हो जाने पर प्रकृति की वह माया उस तृष्णा तक को गायब कर देगी। जहाँ मिथ्या का जाल इस तरह साफ-साफ फैलाया गया हो वहाँ बहादुरी दिखाने की क्या जरूरत है? तुम गुरुजी को नहीं मानते इसीलिए तुम लोगों को यह नहीं मालूम कि गुरुजी ही हमारी नैया के कर्णधार हैं। साधना को अपनी मर्जी के मुताबिक चलाना चाहते हो? याद रखो, अन्त में मझधार में डूबोगे।

यह कह कर शचीश गुरुजी के कमरे में चला गया और उनके चरणों में बैठ कर उनके पाँव दबाने लगा। फिर उसी दिन उसने गुरुजी के लिए हुक्का भरते हुए प्रकृति की शिकायत शुरू कर दी।

लेकिन एक दिन में ही सारी बातें खत्म नहीं हुईं। कई दिनों तक गुरुजी ने कई प्रकार से विचार किया। दामिनी के सिलसिले में वे काफी भुगत चुके थे और अब हालत यहाँ तक आ पहुँची है कि इस छोकरी ने उनके शिष्यों की अविराम भक्ति में बाधा उपस्थित कर दी है। लेकिन शिवतोष अपने घर-द्वार और सम्पत्ति के साथ दामिनी को भी उन्हें इस तरह सौंप गया था कि उसे कैसे और कहाँ हटाया जाय यह सोचना भी मुश्किल था। और इससे भी अधिक मुश्किल बात यह थी कि गुरुजी दामिनी से डरते भी थे।

इधर शचीश अपने उत्साह की मात्रा दूनी-चौगुनी बढ़ा कर और गुरुजी के पाँव दबा कर और हुक्का भरके भी यह नहीं भुला पाया कि प्रकृति उसकी साधना के पथ पर जम कर बैठ गई है।

एक दिन मुहल्ले में गोविन्दजू के मन्दिर में किसी प्रसिद्ध कीर्तनकार की टोली का कीर्तन चल रहा था। भजन खतम होते-होते काफी रात हो आई। मैं शुरू में ही उठ कर चला आया था। लेकिन मैंने इसकी कल्पना तक नहीं की थी कि इतनी भीड़-भाड़ में भी मेरी अनुपस्थिति की ओर किसी की नजर जायगी और मेरी खोज शुरू हो जायगी।

उस शाम को दामिनी के मन का आवरण सहसा खुल गया। जो बातें बड़ी इच्छा होते हुए भी नहीं कही जा सकती थीं वे उस दिन बहुत सहज भाव से दामिनी के मुँह से निकली जा रही थीं। बातें करते-करते वह अनायास जैसे उस दिन अपने मन की न मालूम किन-किन गोपनीय कोठरियों में झाँक गई। जैसे उस दिन वह अपने साथ ही साक्षातकार कर रही थी।

और इसी बीच न मालूम कब पीछे शचीश आ खड़ा हुआ वहाँ।

उस समय दामिनी की आँखों से आँसू झर रहे थे। बात वैसे कुछ भी नहीं थी लेकिन उस दिन जैसे उसकी सारी बातें आँसुओं से धुल कर अन्तर की गहराइयों से निकल रही थीं।

शचीश जिस समय चला आया था उस समय भी अभी कीर्तन खत्म होने में काफी देरी थी। मैं समझ गया कि इतनी देर से उसके मन में बड़ी हलचल मची हुई थी। अचानक शचीश को सामने देख कर दामिनी तुरन्त आँखें पोंछती हुई पास के कमरे की ओर जाने लगी। शचीश ने काँपते हुए स्वर में पुकारा, 'दामिनी, सुनती जाओ, एक बात है।'

दामिनी धीरे-धीरे फिर बैठ गई। मुझे भी जाने की कोशिश करते देख उसने कुछ इस प्रकार मेरी ओर देखा कि मैं भी जैसे वहीं चिपका रह गया।

शचीश बोला, 'हम लोग जिस उद्देश्य से गुरुजी के पास आये हैं, उस उद्देश्य से तो तुम आई नहीं हो, है न?'

वह बोली, 'नहीं।'

शचीश ने कहा, 'तब किसलिए तुम भक्तों के बीच बनी हुई हो?'

दामिनी की आँखों में जैसे आग जल उठी, 'क्यों बनी हुई हूँ? मैं अपनी इच्छा से यहाँ हूँ? तुम्हारे भक्त गण इस भक्ति के कैदखाने में भक्ति की बेड़ी पहना कर बन्दी जो बनाये हुए हैं! क्या तुम लोगों ने मेरे लिए और भी कोई रास्ता रख छोड़ा है?'

शचीश बोला, 'हम लोगों ने तय किया है कि तुम अगर अपनी किसी रिश्तेदार के पास चली जाओ तो तुम्हारे खर्च का हम सारा इन्तजाम कर देंगे।'

'यह तुम लोगों ने तय किया है?'

'हाँ।'

'तो किया होगा। लेकिन मैंने तय नहीं किया है।'

'क्यों ? इसमें तुम्हें कौन सी अड़चन है ?'

'तुम लोगों में कोई किसी उद्देश्य से मेरा इन्तजाम करना चाहता है और दूसरा किसी दूसरे उद्देश्य से मेरा कोई और इन्तजाम करना चाहता है। तो क्या मैं तुम्हारे मनोरंजन के लिए पासे की गोटी हूँ ?'

शचीश हैरानी से उसकी ओर देखता रह गया।

दामिनी बोली, 'मुझे तुम लोग पसन्द करोगे, इसलिए कोई मैं तुम लोगों के बीच नहीं आई और तुम लोग मुझे पसन्द नहीं करते, इसलिए मैं तुम लोगों की मर्जी को सिर आँखों पर लेकर यहाँ से चली जाऊँ, यह भी नहीं होगा !'

यह कहते-कहते वह दोनों हाथों से चेहरा ढँककर मुँह में आँचल दबाती हुई रो पड़ी और भाग कर पास के कमरे में चली गई और अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया।

फिर उस दिन शचीश कीर्तन सुनने नहीं गया। छत पर बिना कुछ बिछाये जमीन पर बैठा रहा। उस दिन दक्षिण की ओर से आने वाली हवा के साथ सागर की लहरों की ध्वनि कुछ इस प्रकार आ रही थी जैसे पृथ्वी के भीतर का रोदन उठ कर नक्षत्रलोक की ओर बढ़ा जा रहा है। मैं भी बाहर आकर गाँव के सुनसान मार्ग पर अँधेरे में टहलने लगा।

४

गुरुजी ने हम लोगों को रस के जिस स्वर्गलोग में बाँध रखने का प्रयत्न किया था, आज यह मिट्टी-धरती उसे तोड़ डालने के लिए जैसे कमर कसे हुए है। इतने दिन तक रूपक के प्याले में भाव का रस भर-भरकर उन्होंने हमें गर्क कर रखा था। अब की बार जब स्वयं रूप आकर रूपक के साथ टकराया तो प्याले को औंधा होकर धरती की ओर गिरने की तैयारी करते देर नहीं लगी। आसन्न विपद के लक्षण भी गुरुजी की आँखों से ओझल नहीं रह सके।

शचीश आजकल न मालूम कैसा विचित्र सा हो गया है। कटी हुई पतंग की तरह वह हवा में डोल तो अब भी रहा था, लेकिन कन्नी खाक गिर पड़ने में अब देर नहीं है। जप-तप, भजन-पूजन वगैरह में तो बाहर से देखने पर कोई खास फर्क नहीं मालूम होता लेकिन उसकी आँखों को देखने से साफ मालूम हो जाता है कि भीतर-भीतर ही उसका पाया खिसक रहा है।

और मेरे बारे में अनुमान करने का तो कोई रास्ता ही दामिनी ने बाकी नहीं छोड़ा। ज्योंही उसने यह समझ लिया कि इस बात से गुरुजी मन ही मन भय खाने लगे हैं और शचीश भीतर ही भीतर पीड़ा का अनुभव करता है तो वह और भी मुझे लेकर खींचातानी करने लगी, आखिर बात यहाँ तक आ पहुँची कि यदि शचीश और गुरुजी बैठे बातें कर रहे होते वह उस समय आकर दरवाजे की ओट से बुला जाती, 'श्रीविलास बाबू, जरा सुनिये तो।' और श्री विलास बाबू से काम भी क्या है यह भी वह सब के सामने नहीं कहती।

गुरुजी मेरे चेहरे की ओर देखते रह जाते हैं और शचीश भी मेरी ही ओर देखने लगता है, और मैं जरा देर उठने न उठने का बहाना बनाने के बाद लपक कर बाहर निकल आता हूँ। मेरे उठ आने पर भी कुछ देर तक बातचीत बनाये रखने की कोशिश होती है। लेकिन बातचीत की अपेक्षा वह कोशिश ही अधिक रह जाती है। और फिर बातचीत खुद ही बन्द हो जाती है। इस प्रकार हर तरफ से अव्यवस्था आती जा रही है। किसी भी तरह एक चीज दूसरी के साथ मिल कर चलना पसन्द नहीं करती।

हम दोनों ही गुरुजी के दल के प्रधान वाहक हैं। इस प्रकार हमें गुरुजी के लिए उच्चैश्रवा और ऐरावत कहना गलत नहीं होगा। इसलिए गुरुजी सहज ही हमारी आस नहीं छोड़ सकते। उन्होंने दामिनी के पास आकर कहा, 'माँ दामिनी, इस बार तो मैं किसी बहुत दूर के बहुत ही दुर्गम स्थान की यात्रा के लिए जाऊँगा, तुम्हें तो यहीं से लौट जाना होगा।'

'कहाँ ?'

'अपनी मौसी के यहाँ।'

'नहीं, यह तो मुझ से नहीं होगा।'

'क्यों ?'

'एक तो यह कि वे मेरी सगी मौसी नहीं हैं, दूसरे मुझे अपने घर में रखने से उन्हें क्या मिलेगा ?'

'तुम्हारा खर्च उन्हें उठाना न पड़े, ऐसा प्रबन्ध—'

'तो क्या झंझट सिर्फ खर्च की ही है ? उन्हें मेरी देखरेख भी तो करनी होगी। इसकी जिम्मेदारी उन पर कैसे डाली जा सकती है ?'

'तो क्या मैं हमेशा तुम्हें अपने साथ ही लिए फिरूँगा ?'

'इसका भी उत्तर क्या आप मुझ से ही माँगते हैं ?'

'मान लो मैं मर जाऊँ तो तुम कहाँ जाओगी ?'

'यह सब सोचने की जिम्मेदारी मेरी नहीं है। मुझे तो सिर्फ इतनी ही बात भली भाँति समझाई गई है कि मेरी मौसी नहीं है, पिता नहीं हैं, भाई नहीं हैं, घर नहीं है, द्वार नहीं है, पैसा नहीं है, कौड़ी नहीं है— कुछ भी नहीं है। इसीलिए मेरा बोझ बहुत बड़ा है। उस बोझ को आपने बड़ी साध से उठा रखा है, उसे अब आप दूसरों के कंधों पर नहीं लाद सकते।' यह कहकर दामिनी वहाँ से चली गई। गुरुजी ने हताश भाव से लम्बी साँस ली, 'हे मधुसूदन !'

दामिनी का हुक्म हुआ कि उसके पढ़ने के लिए कुछ अच्छी-अच्छी किताबें मँगवा दी जायँ। यहाँ यह कहने की जरूरत नहीं कि अच्छी-अच्छी किताबों से दामिनी का मतलब 'भक्ति रत्नाकर' से नहीं था। मुझ पर तो किसी भी तरह का दावा करते हुए उसे कोई संकोच नहीं होता था। उसने यह मान ही लिया था कि मुझ पर दावा करना ही उसका मेरे प्रति सबसे बड़ा अहसान है। वनस्पति जगत में कुछ पेड़ ऐसे भी होते हैं जिनके डाल-पत्तों को छाँटते रहने से ही वे सहीसलामत

बने रहते हैं। दामिनी ने अपनी सम्पर्क में मुझे भी कुछ उसी तरह का आदमी बना दिया था।

मैंने जिस लेखक की किताबें मँगवा दीं वह बिलकुल आधुनिक साहित्यिक था। उसकी रचना में मनु की अपेक्षा मानव का प्रभाव कहीं अधिक था। पुस्तकों के पैकेट गुरुजी के हाथ लग गया। उन्होंने तेवर बदलते हुए पूछा, 'क्यों जी श्रीविलास, ये सारी किताबें किस लिए हैं?'

मैं चुप ही रहा।

गुरुजी दो-चार पृष्ठ उलट कर फिर बोले, 'इनमें सात्विकता की गन्ध तो आ ही नहीं रही है।' मतलब यह कि यह लेखक उन्हें कतई पसन्द नहीं है।

मैं जल्दी में कह बैठा, 'अगर जरा ध्यान से देखा जाय तो सात्विकता की गन्ध न सही लेकिन सत्य की गन्ध जरूर मिल जायगी।'

वास्तव में बात यह थी कि मेरे स्वयं के भीतर भी विद्रोह उमड़ रहा था। भाव के नशे ने मुझे एकदम जर्जर कर रखा था। मनुष्य को एक किनारे रखकर उसके हृदय की वृत्तियों को दिन-रात झंझोरते रहने से जहाँ तक अरुचि होना स्वाभाविक है वहाँ तक मुझे भी होने में कोई कसर नहीं रह गई थी।

गुरुजी क्षण भर मेरी ओर देखते रहे, फिर बोले, 'अच्छा तो एक बार ध्यान देकर ही देखा जाय।' यह कह कर उन्होंने पुस्तकें अपने तकिये के नीचे ही दबा लीं। मैं समझ गया कि लौटाने की उनकी नीयत नहीं है।

दामिनी ने जरूर आड़ से इस घटना का आभास पा लिया होगा। वह दरवाजे के पास आकर बोली, 'आपसे जो किताबें मँगवायी थीं वे क्या अभी तक नहीं आई?'

मैं चुप रहा।

गुरुजी बोले, 'माँ वे किताबें तुम्हारे पढ़ने योग्य नहीं हैं।'

दामिनी ने पूछा, 'आपने किस तरह जाना?'

गुरुजी कुछ भौंह सिकोड़ कर बोले, 'तो तुम ही किस तरह जानती हो ?'

'मैंने पहले भी पढ़ी हैं। आपने शायद नहीं पढ़ी हैं ?'

'तब फिर पढ़ने की क्या जरूरत है ?'

'जी, आपकी तो किसी जरूरत में कभी बाधा नहीं पड़ सकती। बस मेरे लिए ही यह तय कर लिया गया है कि मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं होनी चाहिये।'

'मैं सन्यासी हूँ, यह तुम अच्छी तरह जानती हो।'

'और मैं सन्यासिनी नहीं हूँ यह आप भी अच्छी तरह जानते हैं। मुझे वे किताबें पढ़ने में अच्छी लगती हैं, बस ! लाइये दीजिये !'

गुरूजी ने किताबें तकिये के नीचे से निकाल कर मेरे हाथ के पास छितरा दीं। मैंने उन्हें समेट कर दामिनी की ओर सरका दिया।

इस घटना का नतीजा यह हुआ कि दामिनी जो किताबें अपने कमरे में बैठ कर अकेली पढ़ा करती थी अब उन्हें मुझसे पढ़वा कर सुनने लगी। बरामदे में बैठ कर हमारा पढ़ना-लिखना चलता और आलोचना वगैरह होती। शचीश बार-बार सामने से गुजरता। वह भी चाहता कि साथ बैठ जाय लेकिन खुले मन से बैठ नहीं पाता था।

एक दिन किसी किताब में एक कोई बहुत सुन्दर परिहास की बात निकल आई। सुन कर दामिनी खिलखिला कर हँस पड़ी। उसकी हँसी मानो रुकना ही नहीं चाहती थी। हम लोगों का ख्याल था कि आज मन्दिर में मेला है, शचीश वहीं गया होगा। लेकिन अचानक देखता हूँ कि शचीश पीछे के एक कमरे का दरवाजा खोल कर निकल आया और आकर हम लोगों के साथ बैठ गया।

उसी क्षण दामिनी की हँसी रुक गई। और मैं भी इस स्थिति के लिए तैयार नहीं था। मैंने सोचा कि शचीश के साथ कुछ बात ही की जाय लेकिन कोई बात खोजे नहीं मिल रही थी। मैं चुपचाप किताब के पृष्ठ उलटने लगा।

शचीश जिस तरह अचानक आकर बैठ गया था उसी तरह अचानक उठ कर चला भी गया। उस दिन हम लोगों का पढ़ना और आगे नहीं चल सका। शचीश शायद यह बात नहीं समझ पाया कि मेरे और दामिनी के बीच जिस ओट के न होने की कल्पना करके वह मुझ से ईर्ष्या करता है, असल में उसके और दामिनी के बीच उसी ओट के विद्यमान होने के कारण मैं उससे ईर्ष्या करता हूँ।

उसी दिन शचीश गुरुजी के पास जाकर बोला, 'प्रभु, कुछ अकेले समुद्र की तरफ घूम आना चाहता हूँ। सप्ताह भर के भीतर ही लौट आऊँगा।'

गुरुजी बहुत उत्साह के साथ बोले, 'बड़ी अच्छी बात है। जरूर हो आओ।'

और शचीश चला गया। दामिनी न तो फिर मुझे पढ़ने के लिए ही बुलाया और न उसे मेरी और कोई जरूरत ही पड़ी। उसे मैंने मुहल्ले की स्त्रियों के साथ भी उठते-बैठते नहीं देखा। अब वह अकसर कमरे में ही रहती थी और कमरे का दरवाजा बन्द ही रहता था।

कुछ दिन और बीत गये। एक दिन गुरुजी दोपहर में सो रहे थे और मैं छत के बरामदे में बैठ कर चिट्ठी लिख रहा था। अचानक इसी समय शचीश आ गया और मेरी ओर बिना देखे ही दामिनी के बन्द दरवाजे को धक्का मारते हुए पुकारने लगा, 'दामिनी! दामिनी!'

दामिनी दरवाजा खोल कर बाहर आ गई। शचीश का चेहरा भला कैसा हो गया है! वह इस समय उस जहाज की तरह लग रहा है जो प्रचंड तूफान में फँस कर निकला हो, जिसके पाल फट चुके हों और मस्तूल टूट चुके हों। आँखें न मालूम कैसी हो रही हैं, बाल उलझे-उलझे हैं, मुँह सूखा और उतरा हुआ है, कपड़े बिलकुल गन्दे हो चुके हैं। वह बोला, 'दामिनी, मैंने तुमसे चले जाने के लिए कहा था, वह मेरी भूल थी, मुझे माफ करो।'

दामिनी हाथ जोड़ कर बोली, 'यह आप क्या कह रहे हैं?'

चतु०—५

'नहीं, मुझे माफ करो, दामिनी ! हम लोग अपनी साधना के स्वार्थ से तुम्हें अपने मन के मुताबिक रखें या दूर कर दें, ऐसे बड़े अपराध को मैं कभी मन में भी नहीं लाऊँगा। लेकिन तुम से भी मेरा एक अनुरोध है, वह तुम्हें मानना ही होगा।'

दामिनी ने तुरन्त झुक कर शचीश के दोनों पैर छूते हुए कहा, 'आज्ञा दो तुम !'

वह बोला, 'तुम हमारा साथ दो, दामिनी ! अपने को इस तरह अलग-अलग मत रखो।'

दामिनी बोली, 'यही होगा। अब मैं कोई अपराध नहीं करूँगी।' यह कह कर उसने झुक कर उसके पाँवों की धूलि लेते हुए उसे प्रणाम किया और फिर बोली, 'मैं अब कोई अपराध नहीं करूँगी।'

५

कठिन पाषाण एक बार फिर गला।

दामिनी यथार्थ ज्योति थी, उसका प्रकाश तो बना रहा लेकिन ताप मिट गया। पूजा-अर्चना के भीतर से माधुर्य का फूल खिल उठा। जब भजन-कीर्तन की धुन जमती, जब गुरुजी ज्ञान चर्चा-शुरू करते या गीता-भागवत की व्याख्या करते तो दामिनी कभी पल भर के लिए भी वहाँ से अनुपस्थित नहीं होती। उसकी साज-सज्जा में भी परिवर्तन हो गया। उसने फिर अपनी वही टसर की सफेद साड़ी पहन ली। जब भी कभी वह दिखाई देती तो ऐसी लगती जैसे अभी-अभी स्नान करके चली आ रही हो।

गुरुजी के समीप ही उसकी सबसे कड़ी परीक्षा होती। उन्हें प्रणाम करने के लिए वह झुकती तो उसकी आँखों के कोनों में एक विशेष प्रकार की चमक साफ दिखलाई दे जाती। मैं भली-भाँति जानता था कि

गुरुजी की किसी भी आज्ञा को वह सह नहीं पाती है लेकिन फिर भी वह उन्हें मान लेती है। यहाँ तक कि एक दिन गुरुजी ने साहस करके बँगला के उस आधुनिक लेखक के प्रति अपना विरोध भी प्रकट कर दिया जिसकी पुस्तकें दामिनी ने मँगवायी थीं। दूसरे दिन देखा गया कि गुरुजी के आराम करने के कमरे में उनके बिस्तर के पास कुछ फूल रखे हुए हैं जो उसी लेखक की पुस्तक से फाड़े हुए पन्नों पर रखे हुए थे !

मैंने कई बार यह देखा था कि गुरुजी जब शचीश को अपनी सेवा के लिए बुलाते थे तो दामिनी के लिए यह बहुत ही अधिक असह्य हो उठता था। वह कोई न कोई बहाना बना कर उसे कहीं अलग भेज देती थी और उसका काम खुद ही कर देने की कोशिश करती थी। लेकिन हर बार ऐसा सम्भव नहीं हो पाता था। इसीलिए शचीश जब गुरुजी के लिए हुक्के की चिलम सुलगाते हुए फूँक लगाता तो दामिनी मन ही मन अपनी यही प्रतिज्ञा दोहराती कि मैं अपराध नहीं करूँगी। लेकिन शचीश ने सचमुच में जो कुछ सोचा था वह तो कुछ हुआ ही नहीं। इसी तरह पहले भी एक बार जब दामिनी ने आत्म-समर्पण में अपना सिर झुकाया था तब भी शचीश ने उसके अंतस्थमाधुर्य को ही देखा था, लेकिन जो चीज स्वयं मधुर थी उसे उसने कभी नहीं देखा था।

लेकिन इस बार स्वयं दामिनी ही शचीश के निकट इस प्रकार सत्य हो उठी कि भजन-कीर्तन की लड़ियों और तत्त्व के उपदेशों को ठेल कर वही सबसे आगे बढ़ कर दिखाई देती। उसे इस बार किसी भी तरह ढँक कर नहीं रखा जा सका।

शचीश उसे इतना साफ-साफ देख पाता था कि उसके भक्ति भाव का नशा ही उड़ जाता था। उसे वह कोशिश करके भी अरूप रस का रूपक नहीं मान पाता था। आज दामिनी भक्ति के उन गीतों को अपने कंठ से सजा कर सुन्दर नहीं बनाती थी, बल्कि वे गीत आज स्वयं दामिनी को सँवार कर सुन्दर और आकर्षक बना देते हैं।

यहाँ एक बात और कह दूँ कि दामिनी को अब मेरी कोई जरूरत नहीं रह गई है। मेरे पास अब उसकी कोई फरमाइश नहीं आती। मेरे जो सहयोगी थे उनमें चील तो मर गई, नेवला भाग गया कुत्ते के पिल्ले के अनाचार से। गुरुजी इतने परेशान हो गये थे कि दामिनी को उसे किसी को दान कर देना पड़ा। इस तरह फिर से बेकार और मित्रहीन होकर मैं गुरुजी के दरबार में पहले की तरह ही भरती हो गया हालाँकि वहाँ की सारी बातचीत और गाना-बजाना मुझे इस बार बिलकुल ही नीरस लगा।

६

एक दिन शचीश कल्पना के उन्मुक्त पात्र में पूर्व और पश्चिम, भूतकाल और वर्तमान के सारे दर्शन और विज्ञान, रस और तत्त्व को साथ करके एक अपूर्व अर्क उतार रहा था कि इसी समय अचानक दामिनी दौड़ती हुई आई और बोली, 'अजी, एक बार जरा इधर तो आओ।'

मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा और बोला, 'क्यों क्या हुआ ?'

दामिनी बोली, 'नवीन की घरवाली ने शायद जहर खा लिया है।'

नवीनचन्द्र गुरुजी के किसी शिष्य का रिश्तेदार था और हमारा पडोसी तथा हमारे कीर्तन-दल का एक गायक था। हम लोगों ने जाकर देखा उसकी स्त्री तब तक समाप्त हो चुकी थी। पता लगाने पर मालूम हुआ कि नवीन की स्त्री ने अपनी बिना माँ की बहन को अपने पास लाकर रखा। वे लोग कुलीन ठहरे, इसलिए लड़की के लायक पात्र मिलना कठिन था। लड़की देखने में अच्छी थी और नवीन के छोटे भाई ने उसे विवाह के लिए पसन्द भी किया था। सब कुछ ठीक हो चुका था। इसी बीच नवीन की पत्नी को चला पता कि उसके पति और उसकी बहन में प्रेम शुरू हो गया है। तब उसने पति से अनुरोध किया कि वह उसकी बहन से विवाह कर ले। इसके लिए कोई खास जोर-जबरदस्ती नहीं करनी पड़ी। उसका पति राजी हो गया। विवाह खत्म होने पर नवीन की पहली पत्नी ने आज जहर खाकर आत्महत्या कर ली थी।

उस समय कोई खास काम नहीं था, इसलिए हम लोग लौट आये। गुरुजी के पास बहुत से शिष्य आ जुटे और कीर्तन होने लगा। गुरुजी भी कीर्तन में मग्न होकर नाचने लगे।

तब रात के शुरू पहर का चाँद आसमान में निकल आया था। छत के जिस कोने में बरगद के पेड़ की कुछ शाखायें झुक आई थीं उन्हीं की छाया में दामिनी चुपचाप बैठी थी। शचीश उसके पीछे की ओर के छायादार बरामदे में धीरे-धीरे चहलकदमी कर रहा था। मुझे डायरी लिखने का रोग-सा है, इसलिए मैं अकेला बैठ कर डायरी लिख रहा था।

उस दिन अमराई में कोयल की आँखों में जैसे नींद नहीं थी। दक्षिण से आनेवाला पवन पत्तों को मुखरित कर रहा था। उन पर चाँदनी छिटक रही थी। अचानक न मालूम शचीश के मन में क्या आया कि वह दामिनी के पीछे आकर खड़ा हो गया। दामिनी ने चौंक कर सिर पर कपड़ा खींच लिया और वहाँ से चलने का उपक्रम करने लगी।

शचीश ने पुकारा, 'दामिनी!'

दामिनी रुक कर खड़ी रह गई। फिर हाथ जोड़ कर बोली, 'प्रभु, मेरी एक बात सुनो।'

शचीश चुपचाप उसकी ओर देखता रह गया। दामिनी बोली, 'मुझे इतना समझा दो कि तुम लोग रात-दिन जिस रस को लेकर बावले बने फिरते हो उससे संसार में किसका कौन-सा प्रयोजन सधता है? तुमने कब इससे किसी का उद्धार किया है?'

मैं अपने कमरे से निकल कर बरामदे में आ खड़ा हुआ। दामिनी बोली, 'तुम लोग चौबीसों घन्टे रस की पुकार मचाया करते हो, उसके अलावा तुम्हारे पास कोई बात ही नहीं है। रस क्या है यह तो तुमने आज अपनी आँखों देख लिया न? इस निगोड़े रस के न धर्म है, न कर्म है, न भाई, न स्त्री, न कुल, न मान। उसके दया-माया नहीं, श्रद्धा-विश्वास

नहीं, लाज शर्म नहीं। इस निर्लज्ज निष्ठुर सत्यानाशी रस के रसातल से मनुष्य की रक्षा करने का तुमने क्या उपाय किया है ?'

मुझसे रहा नहीं गया। मैं बोल उठा, 'हमने स्त्रियों को अपनी चहारदीवारी से दूर खेद कर खूब निरापद स्थान में रस की साधना करने का कौशल रचा है।'

मेरी बात पर जरा भी ध्यान न देकर दामिनी शचीश से कहती गई, 'मैंने तो तुम्हारे गुरु के निकट कुछ भी नहीं पाया। वे तो मेरे चंचल मन को पल भर भी शान्ति नहीं दे सके। आग से आग नहीं बुझाई जाती। तुम्हारे गुरु जिस पथ पर सब को चला रहे हैं वहाँ न धैर्य है, न वीर्य, न शान्ति। आज यह जो लड़की मर गई रस की राक्षसी ने ही तो उसके प्राण लिये हैं। कैसा कुत्सित चेहरा हो गया था उसका, यह तो तुमने अपनी आँख से देख लिया न ? प्रभु, हाथ जोड़ कर कहती हूँ, उस राक्षसी के आगे तुम मेरा बलिदान न कर देना। मुझे बचाओ, अगर कोई मुझे बचा सकता है तो वह तुम ही हो।'

पल भर के लिए हम स्तब्ध रह गये। चारों ओर स्तब्धता का राज्य था। मुझे ऐसा लगा जैसे झिल्ली के रव से पीले आसमान की सारी देह झनझनाने की तैयारी कर रही है।

शचीश बोला, 'मैं क्या कर सकता हूँ तुम यह बताओ।'

दामिनी बोली, 'तुम ही मेरे गुरु होओ। मैं और किसी को नहीं मानूँगी। मुझे कुछ ऐसा मन्त्र दो जो इस सब के ऊपर हो—जिसके सहारे मैं जी सकूँ। मेरे साथ मेरे आराध्य देवता को भी तुम नष्ट न होने देना।'

शचीश स्तब्ध खड़ा रह कर कुछ देर बाद बोला, 'यही होगा।'

दामिनी शचीश के पाँवों के धरती पर बहुत देर तक माथा टेक कर प्रणाम किये रही और बार-बार यही गुनगुनाती रही, 'तुम ही मेरे गुरु हो ! तुम ही मेरे गुरु हो ! मुझे सब प्रकार के अपराधों से बचाओ, बचाओ, बचाओ !'

परिशिष्ट

अखबारों में एक दिन फिर से अफवाहों और कटु आलोचनाओं का तूफान मच गया, और कहा जाने लगा कि शचीश के मत में फिर परिवर्तन हो गया है। एक दिन वह बड़े ऊँचे स्वर से जात-पाँत और धर्म का विरोध करता था और किसी में विश्वास नहीं करता था। फिर एक दिन ऐसा भी आया जब खान-पान, योग-याग, देवी-देवता वगैरह ऐसी कोई चीज बाकी नहीं रही जिसे वह मानता न रहा हो। और, इसके बाद एक दिन ऐसा भी आया कि इस सब का बोझ एक ओर झाड़ कर वह शांति से एक किनारे जा बैठा। उसने क्या माना और क्या नहीं माना यह सब कुछ समझ में नहीं आया। सिर्फ इतना ही देखा गया कि वह फिर से जी-जान से अपने काम में लग गया है। किन्तु काम के सिलसिले में इस बार उसने झगड़ा-फसाद का रूप बिलकुल नहीं अपनाया। सब कुछ शान्त ढंग से ही जारी रखा।

इसके अलावा एक बात और थी जिसके बारे में अखबारों में बड़ा विवाद छिड़ा था तथा व्यंग्य और तानेबाजी की भरमार थी, वह था मेरे साथ दामिनी का विवाह हो जाना। इस विवाह का रहस्य सब लोग नहीं समझ सकेंगे और शायद समझने की जरूरत भी नहीं है।

श्रीविलास

१

इस जगह किसी जमाने में निलहेगारों की कोठी खड़ी थी। आज तो केवल खँडहर के रूप में कुछ टूटे-फूटे कमरे भर बचे हैं। दामिनी की मृतदेह का दाह-संस्कार करके जब मैं वापस अपने नगर लौटने लगा तो मुझे यह स्थान पसन्द आ गया और मैं कुछ दिनों के लिए यहीं रम गया।

नदी से लेकर कोठी तक के रास्ते में दोनों ओर शीशम के पेड़ों की कतार है। बगीचे के प्रवेश-द्वार पर बाहरी फाटक के दो खंभे और चहारदीवारी का थोड़ा-सा हिस्सा अब भी बचा है, लेकिन अब बाग नहीं रहा। बाकी बची हुई चीजों में एक कोने में कोठी के किसी मुसलमान गुमाश्ते की कब्र भर बची है जिसकी हर दरार से न मालूम किन-किन फूलों के पौधे के झाड़-झंखाड़ निकले हुए हैं। जिस प्रकार सुहागरात में वर की चंचल सालियाँ शरारत से वर के कान मसल कर हँसी की हिलोर में डूब जाती हैं उसी तरह मृत्यु के कान मल कर ये पौधे दक्षिण पवन में लोटपोट हुए जा रहे हैं। मेंड़ टूट गई है और इससे पोखरका पानी बह कर सूख चुका है, उसकी तली में धनिया और चने की खेती गाँव के किसानों ने कर रखी है। जब मैं सील खाई

हुई ईंटों के टीले पर शीशम की छाया में बैठा रहता हूँ, तब धनिया के फूलों की महक से सिर झूम उठता है।

मैं बैठा-बैठा सोचा करता हूँ कि यह नील की कोठी जो आज मुर्दा ढोरों के गढ़े में फेंकी हुई गाय की ठठरी की तरह उजाड़ पड़ी है, किसी दिन सजीव रही होगी। शायद एक दिन इसने अहंकार के मद में भर कर सोचा होगा कि इसने अपने चारों ओर सुख-शांति का राज फैला रखा है वह कभी नष्ट नहीं होगा। यहाँ बैठे-बैठे कोठी के जिस खूँखार गोरे साहब ने हजारों गरीब खेतिहरों का खून पानी कर डाला होगा, उसके सामने मेरे जैसे एक साधारण बंगाली युवक की हस्ती ही क्या है? लेकिन फिर भी धरती ने अपने हरे रंग का आँचल अपनी कमर में खोंस कर किसी तत्पर गृहिणी की तरह अनायास ही उस गोरे साहब के साथ-साथ उस समूची कोठी को खूब अच्छी तरह मिलेड से माँज-घिसकर निखार दिया है। यहाँ-वहाँ जो एकाध पुराना दाग दिखाई देता है वह भी कुछ दिनों में साफ हो जायगा।

बात पुरानी है! मैं उसे आज दुहराने नहीं बैठा हूँ। मेरा मन कहता है कि यह जो हर रोज नया सबेरा खिल उठता है यह उस काल देवता का आँगन लीपना मात्र नहीं है। कोठी का वह साहब और उसकी नील-कोठी की वह विभीषिका एक सामान्य धूल के चिन्ह की तरह भले ही मिट गये हों, लेकिन मेरी दामिनी!

मैं जानता हूँ कि मेरी बात कोई नहीं सुनेगा, शंकराचार्य का 'मोहमुद्गर' किसी को छोड़ता कहाँ है! 'मायामयमिदमखिलम्'... इत्यादि-इत्यादि न मालूम कितनी ही बातें वैरागियों के शास्त्र में लिखी हैं। लेकिन शंकराचार्य तो सन्यासी थे। 'का तव कान्ता कस्ते पुत्रः'—। आदि उन्होंने जरूर कहा था, लेकिन उसका मतलब उन्होंने नहीं जाना। चूँकि मैं सन्यासी नहीं हूँ इसलिए अच्छी तरह जानता हूँ कि दामिनी कमल के पत्ते पर केवल पल भर के लिए झिलमिलाने वाली बूँद की तरह नहीं थी—वह सत्य थी।

लेकिन गृहस्थ लोग भी इसी तरह की वैराग्य की बातें कहा करते हैं। कहते होंगे। ऐसे लोग बेचारे केवल गृही हो पाते हैं, गृहिणी को नहीं उपलब्ध कर पाते। उनका घर भी सचमुच में माया ही समझिये, और गृहिणी भी कोई सत्य नहीं हो पाती। उनके लिए ये सब जैसे हाथ की गढ़ी हुई चीजें हैं, बस झाड़ू फिरी और सब कुछ साफ!'

मुझे गृही होने का समय ही नहीं मिला, और सन्यासी होना मेरी प्रकृति में नहीं है—यही गनीमत है। इसीलिए जिसे मैंने अपने इतने निकट पाया वह गृहिणी भी नहीं हुई आई न माया हुई। वह सत्य ही बनी रही—वह आदि से अन्त तक दामिनी ही थी। उसे छाया कह सके ऐसा साहस कौन कर सकता है? अगर मैं दामिनी को अपने घर की गृहिणी के रूप में ही जानता तो बहुत सी बातें नहीं लिख पाता। मैंने उसे उस रिश्ते की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ी और सत्य वस्तु के रूप में जाना है, इसीलिए मैं सारी बातें साफ-साफ लिख सका हूँ—अब लोग जो चाहें सो कहा करें।

माया जगत में जिस तरह मनुष्य दिन काटा करता है, उसी तरह अगर दामिनी के साथ मैं भी गिरिस्ती बसा कर रहता और तेल मल कर स्नान करके भोजन के बाद पान चबाते हुए आराम से जिन्दगी गुजार देता! और फिर दामिनी की मृत्यु के बाद लम्बी साँस लेकर कहता, 'संसारो यमतीव विचित्रः!' और इतना ही नहीं, संसार के वैचित्र्य की एक बार फिर से परीक्षा करने के लिए किसी बूढ़ी बुआ या मौसी का अनुरोध भी शिरोधार्य कर लेता! लेकिन पुराने जूते में जिस तरह आसानी से पाँव चला जाता है, इस तरह सहज भाव से तो मैंने संसार में प्रवेश किया नहीं था—शुरू से ही सुख की आशा मैंने छोड़ दी थी। लेकिन नहीं, यह बात भी सही नहीं है। सुख की आशा छोड़ दूँ इतना बड़ा अमानव मैं नहीं हूँ। सुख की आशा तो अवश्य करता था, लेकिन यह सच है कि मैंने सुख का दावा करने का अधिकार अपने को नहीं देरखा था।

यह अधिकार क्यों नहीं दे रखा था ? इसलिए कि मैंने खुद ही दामिनी को विवाह के लिए राजी किया था। किसी रंगीन रेशमी परिधान के झीने घूँघट की ओट से शहनाई की तान पर हमारी 'शुभ दृष्टि' या प्रथम दर्शन नहीं हुआ था। दिन के प्रखर उजाले में सब कुछ देख-सुन कर और समझ-बूझ कर ही मैंने यह कार्य किया था।

लीलानन्द स्वामी को छोड़ कर जब मैं चला आया, तो नोन-तेल-लकड़ी की बात सोचने का अवसर आया। इतने दिनों तक तो जहाँ भी जाता था वहाँ गुरुजी का प्रसाद मिल जाता और मैं खूब छक कर खाता था। तब तो भूख की बजाय अजीर्ण की पीड़ा ने ही सबसे अधिक सताया था। संसार में मनुष्य को घर बसाना पड़ता है, उसकी रखवाली करनी पड़ती है, और कम से कम मकान तो किराये पर लेना ही पड़ता है, यह सब जैसे हम लोग भूल चुके थे। बस सिर्फ यही जानते थे कि घर में आराम से रहना चाहिये। हमने कभी यह नहीं सोचा कि घर वाला बेचारा अपने घर में एक हाथ जगह भी कैसे पायेगा। यह चिन्ता हम गृहस्थ पर ही छोड़ देते थे कि हम साधु लोग उसकी गिरिस्ती में कहाँ हाथ पैर फैला कर आराम कर सकेंगे।

तभी याद आया कि ताऊजी ने अपने वसीयतनामे में अपना मकान शचीश के नाम कर दिया था। वसीयतनामा अगर शचीश के हाथ में होता तो अब तक वह रस के आवेग में न मालूम कहाँ कागज की नाव की तरह डूब गया होता। लेकिन भाग्य से वह मेरे ही हाथ में था, मैं ही उसका एक्जीक्यूटर था। वसीयतनामे में कुछ ऐसी भी बातें थीं जिन्हें निभाने का भार मुझ पर ही था। तीन खास शर्तें इस प्रकार थीं, इस घर में कभी पूजा-पाठ नहीं हो सकेगा, नीचे के हिस्से में मुहल्ले के मुसलमानों और चमारों के लड़कों के लिए रात्रि-पाठशाला बराबर चलती रहेगी, और शचीश की मृत्यु के बाद यह पूरा मकान इन्हीं लोगों की शिक्षा और उन्नति के काम के लिए लगा दिया जायगा।

संसार में ताऊजी सबसे अधिक क्रोध करते थे पुण्य के नाम पर।

वे गिरिस्ती की अपेक्षा इस वस्तु को अधिक हेय मानते थे। पासवाले मकान में पुण्य की घोरतम हवा बह रही थी। उसी के असर को दूर करने के लिए उन्होंने यह व्यवस्था की थी। अँग्रेजी में वे इसे सैनिटरी प्रिकाशन कहा करते थे। मैंने शचीश से कहा, 'चलो, उस कलकत्ते वाले मकान में चल कर रहें।'

शचीश ने कहा, 'मैं अब भी इसके लिए ठीक से तैयार नहीं हो सका हूँ।'

मुझे उसकी बात कुछ समझ में नहीं आई। उसने कहा, 'किसी दिन बुद्धि पर भरोसा किया था लेकिन मालूम हुआ कि उस पर जीवन का सारा भार नहीं टिकाया जा सकता। फिर एक बार रस पर भरोसा किया। लेकिन देखा, वहाँ तल नाम की कोई चीज ही नहीं है। बुद्धि भी मेरी अपनी है और रस भी मेरा निजी है, इसलिए अपने ही ऊपर खड़ा होना संभव नहीं। और किसी प्रकार का आश्रय पाये बिना मेरे लिए फिर से शहर लौट जाने की हिम्मत करना संभव नहीं है।

मैंने पूछा, 'तो क्या करना होगा, बताओ।'

उसने कहा, 'तुम दोनों चले जाओ। मैं कुछ दिनों तक अकेला ही घूमूँगा। ऐसा जान पड़ता है मानों किसी जगह कुछ कूल किनारा दिखाई दे रहा है। अगर इस समय उसकी दिशा भूल जाऊँगा तो फिर वह हमेशा के लिए मेरी आँख से ओझल हो जायगा। फिर मैं उसे खोज नहीं पाऊँगा।'

तभी ओट से आकर दामिनी ने मुझसे कहा, 'यह नहीं हो सकेगा। अकेले भटकते फिरेगा तो उनकी देखभाल कौन करेगा? एक बार अकेले निकले तो थे, याद नहीं कैसी शक्ल लेकर लौटे थे। मुझे वह सब याद करते-करते डर लगता है।'

सच बात कहूँ? दामिनी के इस उद्वेग ने मेरे मन में क्रोध का डंक-सा मार दिया—दुःसह जलन होने लगी। ताऊजी की मृत्यु के बाद

तो शचीश अकेला ही घूमता रहा था, उस समय वह मर तो नहीं गया। मैं अपने मन का यह भाव छिपा नहीं सका, जरा तीखेपन से कह ही गया।

दामिनी बोली, 'श्रीविलास बाबू, आदमी के मरने में बहुत समय लगता है, यह बात मुझे भी मालूम है। लेकिन जब हम लोग मौजूद हैं तो इन्हें जरा-सी भी तकलीफ क्यों होने दें ?'

हम लोग ! इस बहुवचन का आधा हिस्सा इस अभागे श्रीविलास से सम्बन्ध रखता है, यही क्या कम है ! संसार के एक श्रेणी के लोगों को दुख से बचाने के लिए दूसरी श्रेणी के लोगों को दुख उठाना ही होगा। इन्हीं दो श्रेणियों से तो यह संसार बना है। दामिनी ने इतना तो अच्छी तरह समझ ही लिया है कि मैं किस श्रेणी का आदमी हूँ। इसलिए उसने मेरी गिनती अपने साथ ही कर ली, इसी पर मुझे सुखी होना चाहिये।

इसलिए शचीश से कहा, 'अगर अभी शहर नहीं गये तो इसमें हर्ज ही क्या है ? न सही। चलो नदी किनारे वह जो नीली कोठी वाला खँडहर है वहीं कुछ दिन बिताये जायँ। सुना है कि वहाँ भूत का उत्पात हुआ करता है सो कम से कम वहाँ आदमी के उत्पात की सम्भावना तो नहीं है !'

शचीश ने कहा, 'और तुम दोनों ?'

मैंने कहा, 'हम दोनों भूत की ही तरह अपने को छिपा कर रखा करेंगे।'

शचीश ने एक बार दामिनी की ओर देखा। उसकी दृष्टि में शायद कुछ आशंका झाँक रही थी।

दामिनी ने हाथ जोड़ कर कहा, 'तुम मेरे गुरु हो। मैं चाहे कितनी ही पापी क्यों न होऊँ, मुझे सेवा के अधिकार से वंचित न करना !'

२

आप चाहे जो कहें, लेकिन मैं स्वीकार करता हूँ कि शचीश की यह साधना के लिए व्याकुलता मेरी समझ में नहीं आई। वैसे एक दिन तो

इस चीज को हँस कर उड़ा दिया था, लेकिन आज और चाहे जो हो हँसी बन्द हो गई है। यह उल्का प्रकाश नहीं है यह तो साक्षात् अग्नि है। एक दिन शचीश ने जब इसकी जलन देखी तो उसके आगे ताऊजी की सीख भी भूल गया। किस भूत पर विश्वास करने से इसका श्री गणेश हुआ था और किस अद्भुत तत्त्व में विश्वास जगा रखने से इसका अंत होगा, इस बहस को छेड़ कर हरबर्ट स्पेन्सर के साथ मुकाबला करके क्या होगा? साफ ही तो देख रहा हूँ कि शचीश भीतर ही भीतर सुलग रहा है, उसका जीवन इस सिरे से लेकर उस सिरे तक लाल होकर धू-धू कर रहा है।

इतने दिन नाच कर, गा कर, गुरुजी की सेवा करके, दिन-रात बेचैन रहता था वह भी शायद ठीक ही था। वहाँ वह हर घड़ी अपने मन की सारी शक्ति को उड़ेल कर अपने आप को दीवालिया कर डालता था लेकिन अब तो वह स्थिर था और इस स्थिति में मन को दबा रखने का कोई उपाय नहीं रह गया है। आज रस के काल्पनिक जगत में डूब जाने का कोई अवकाश नहीं। इस समय तो अनुभूति के सत्य-लोक में प्रतिष्ठित होने के लिए भीतर ही भीतर ऐसी लड़ाई चल रही है कि शचीश का मुँह देख कर डर लगता है।

शचीश चिढ़ कर बोला, 'चुप रहो, विश्री चुप रहो। जो सहज है उसे भला बाहर से किसी की क्या जरूरत? धोखा ही सहज होता है, सत्य कठिन।'

मैं डरते-डरते बोला, 'उसी सत्य को पाने के लिए रास्ता दिखाने वाला—

शचीश अधीर होकर बोला, 'अजी, यह तुम्हारे भूगोल का सत्य नहीं है—जो जिस किसी ने दिशा दिखला दी। मेरे अन्तर्यामी का आना-जाना सिर्फ मेरे ही रास्ते से हो सकता है—गुरु का रास्ता गुरु के ही आँगन में जाने का रास्ता है।'

इसी शचीश के मुँह से कितनी बार कितनी उलटी बातें सुनने को मिली हैं। मैं, श्रीविलास, ताऊजी का शिष्य अवश्य हूँ, लेकिन उन्हें गुरु अगर मैं कहता तो वे डंडा लेकर मुझे मारने को दौड़ पड़ते। उसी श्रीविलास से शचीश ने गुरुजी के पैर दबवा लिये और फिर दो दिन भी नहीं बीत पाये थे कि मेरे लिए यह आख्यान! मुझे हँसने का भी साहस नहीं हुआ, मैं गम्भीर हो रहा।

शचीश बोला, 'आज मैं साफ समझ रहा हूँ कि "स्वधर्मे निधनं श्रेय परधर्मो भयावहः", इस श्लोक का अर्थ क्या है। और सभी चीज दूसरे के हाथ से पाई जा सकती हैं, परन्तु यदि धर्म अपना हो तो वह मारता ही है बचाता नहीं। मेरे भगवान दूसरों के हाथ से मिली हुई मुट्ठी भर भीख नहीं हैं। अगर मैं उन्हें पाऊँगा तो मैं ही उन्हें पाऊँगा, नहीं तो निधन श्रेयः।'

बहस करना मेरा स्वभाव है। मैं इसे सहज छोड़ने वाला आदमी नहीं। मैंने कहा, 'जो कवि होता है वह मन के भीतर से कविता पाता है, जो नहीं होता वह दूसरे से कविता ग्रहण करता है।'

शचीश निस्संकोच कह पड़ा, 'मैं कवि हूँ।'

बस, झगड़ा खत्म! भला इस पर कोई क्या कहे? मैं चला आया।

शचीश के खाने-सोने आदि का कुछ भी ठिकाना नहीं, कहाँ रहता है, इसका भी उसे कुछ होश नहीं। उसका शरीर प्रति दिन अधिक से अधिक सान चढ़ायी हुई छुरी की तरह सूक्ष्म होता जा रहा है। देखने से मालूम होता है जैसे अब वह इस अवस्था को और अधिक बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। तो भी उसे छेड़ने का साहस नहीं होता था। लेकिन दामिनी इसे नहीं सह पाती थी। भगवान पर बहुत क्रुद्ध है। जो उनकी भक्ति नहीं करता उसी से वे हारे रहते हैं और भक्त पर ही इसका बदला चुकाया जाता है। भला यह भी कोई न्याय है? लीलानन्द स्वामी पर क्रोध करके तो दामिनी बीच-बीच में उन पर अपनी नाराजी भी खूब जाहिर

कर देती है। लेकिन भगवान का कोई पता-ठिकाना न होने पर उनके साथ ऐसा कर सकना जरा संभव नहीं हो पाता।

भगवान के आगे उसकी कुछ चले न चले लेकिन वह शचीश को यथा समय स्नान भोजन आदि कराने से कभी पीछे नहीं रहती थी। इस तीन लोक से न्यारे मनुष्य को नियम में बाँधने के लिए वह न मालूम कौन-कौन सा उपाय काम में लाती थी।

बहुत दिनों तक शचीश ने इसका स्पष्ट रूप से कोई प्रतिवाद नहीं किया। एक दिन बड़े सबेरे ही वह नदी पार करके उस पार पानी में निकले हुए एक रेतीले टापू पर चला गया। सूर्य सिर पर आया, फिर पश्चिम की ओर ढलने भी चला गया। पर शचीश का कहीं पता नहीं था। दामिनी उस दिन भूखी ही बैठी उसकी पतीक्षा करती रही। जब उससे नहीं रहा गया तो भोजन की थाली लेकर वह घुटने-घुटने भर पानी को पार करके उसके पास जा पहुँची।

मैदान चारों ओर साँय-साँय कर रहा था—किसी जीव-जन्तु का नाम-निशान तक नहीं था। धूप जितनी निष्ठुरता से चमक रही है उसी तरह पानी की लहरें भी हैं—वे मानों शून्यता की पहरेदार हैं, और कुँन्डली मारे चुपचाप बैठी हैं।

जहाँ किसी पुकार का कोई जवाब नहीं, किसी प्रश्न का कोई उत्तर नहीं, ऐसी सीमाहीन निर्जनता में खड़े-खड़े दामिनी का हृदय बैठ गया। ऐसा जान पड़ता था कि मानो यहाँ का सब कुछ मिट कर एकदम एकाकार होकर किसी आदिम उज्ज्वलता की अवस्था को पहुँच गया है। पैरों के नीचे पड़ा हुआ है केवल 'न'। उसमें न तो शब्द है न गति, न रक्त की लालिमा है, न पेड़ पौधों की हरियाली, न आकाश की नीलिमा न मिट्टी का गेरुआपन। जैसे किसी मुर्दे के सिरहाने किसी की प्रकांड ओष्ठहीन हँसी हो, जैसे किसी बेहरम तपे हुए आसमान के पास विपुल सूखी जीभ ने भयंकर तृष्णा का एक विशाल आवेदन पेश किया हो।

दामिनी सोच ही रही थी कि किधर जाय तभी अचानक बालू पर पैरों के कुछ चिन्ह दिखाई दे गये। उन्हें देखते हुए वह जहाँ जा पहुँची वहाँ पानी का एक छोटा सा गढ़ा-सा था। उसके किनारे-किनारे भीगी मिट्टी पर असंख्य पक्षियों के पैरों के निशान दिखाई दे रहे थे। वहीं बालू की करार पर शचीश बैठा था। सामने का पानी गहरे नीले रंग का दिखाई दे रहा था। पानी के किनारे चंचल पक्षी अपनी पूँछ नचा-नचाकर अपने गंगा-जमुनी पंखों की झलक दिखा रहे थे। कुछ दूर चकवा-चकई का दल शोर मचा रहा था। और पूरी तरह कोशिश करने पर भी अपनी पीठ के पंखों को ठाक से झाड़ नहीं पा रहा था। दामिनी ज्योंही पास पहुँची वे सब पंख फैला कर शोर करते हुए वहाँ से उड़ गये।

दामिनी को देख कर शचीश बोल उठा, 'यहाँ कैसे ?'

वह बोली, 'खाना लाई हूँ।'

शचीश ने कहा, 'मैं नहीं खाऊँगा।'

दामिनी बोली, 'बहुत देर हो गई है।'

शचीश ने केवल नाहीं कर दी और फिर वह चुप हो रहा।

दामिनी बोली, 'अभी न सही। कुछ देर मैं बैठ जाती हूँ, तुम कुछ देर बाद ही—'

शचीश बीच में ही बोल उठा, 'उफ्, क्यों तुम नाहक ही—'

लेकिन अचानक दामिनी का मुँह देख कर वह रुक गया। दामिनी कुछ नहीं बोली। थाली लेकर चुपचाप उठी और चली गई। चारों ओर की शून्य बालू रात में बाघ की आँखों की तरह चमकने लगी।

दामिनी की आँखों में आग जितनी आसानी से सुलगती है, पानी उतनी आसानी से नहीं आया करता। लेकिन उस दिन मैंने देखा कि वह जमीन पर पैर फैलाये बैठी है और उसकी आँखों से नीरव आँसू बह रहे

हैं। मुझे देखकर उसकी रुलाई जैसे बाँध तोड़ कर बह निकली। मुझे न मालूम कैसा-कैसा लगने लगा। मैं एक ओर चुपचाप बैठ गया।

जब वह कुछ स्वस्थ हुई तो मैंने उससे कहा, 'शचीश के लिए तुम इतनी चिन्तित क्यों होती हो?'

वह बोली, 'तो उनकी और कौन-सी चिन्ता कर सकती हूँ बताओ? शरीर के सिवा तो और सब बातों की चिन्ता वे खुद ही कर रहे हैं। मैं तो वह सब कुछ समझती नहीं और न उस विषय में कुछ कर ही सकती हूँ।'

मैंने कहा, 'देखो, मनुष्य का मन जब बहुत जोर से किसी चीज को पकड़ लेता है, उस पर केन्द्रित हो जाता है तो उसके शरीर के अन्य-अन्य सारे प्रयोजन अपने आप कम हो जाते हैं। इसीलिए बड़े भारी दुख या बहुत बड़े आनन्द के समय भूख नहीं लगती। इस समय शचीश का मन जैसी अवस्था में है उसमें अगर उसके शरीर की ओर ध्यान न भी दो तो कोई हानि नहीं होगी।'

दामिनी बोली, 'मैं नारी जो हूँ! उसी शरीर को देह और प्राण से गढ़ना हमारा धर्म जो है—यह काम हम स्त्रियों का अपना है। इसीलिए जब हम देखते हैं कि वह शरीर कष्ट पा रहा है तो हमारा मन सहज ही रो उठता है।'

मैं बोला, 'इसीलिए जो लोग मन की दुनिया में मस्त रहते हैं, वे अपने शरीर की अभिभावक, तुम स्त्रियों को आँख उठा कर देखते भी नहीं।'

दामिनी कुछ गर्व से बोली, 'और नहीं तो क्या? और जब देखते हैं तो फिर कुछ इस तरह देखते हैं कि तीन लोक से न्यारी वस्तु की सृष्टि हो उठती है।'

मैंने मन ही मन कहा, उसी तीन लोक से न्यारी वस्तु पर ही तो

तुम्हारे लोभ की कोई सीमा नहीं रहती ? आह, श्रीविलास तू भी कुछ ऐसा पुण्य कर कि तू भी अगले जन्म में इन तीन लोकों से न्यारे लोगों में पैदा हो सके !

३

उस दिन नदी किनारे शचीश ने दामिनी को ऐसी कठिन चोट पहुँचाई कि उसके परिणामस्वरूप दामिनी की कातर दृष्टि को वह अपने मन से नहीं हटा सका। इसके बाद वह कुछ दिनों तक दामिनी के ऊपर कुछ विशेष अनुकम्पा दिखाने लगा। काफी दिनों तक तो उसने हम लोगों से ठीक से बात तक नहीं की। बाद में दामिनी को पास बुला कर उससे बात करने लगा। बातचीत का विषय वे अनेक बातें हुआ करती थीं जिनका साक्षात्कार शचीश ने इतने दिनों से ध्यान और मनन से किया था।

दामिनी शचीश की उदासीनता से इतनी नहीं डरती थी जितना कि वह उसकी इस विचित्र ममता से डरने लगी। वह जानती थी शचीश इसे अधिक दिनों तक पाल नहीं सकेगा क्योंकि उसकी प्रकृति ही ऐसी नहीं थी। उसके लिए यह एक महँगा सौदा होता। एक दिन ज्यों ही हिसाब की ओर उसकी नजर पड़ेगी कि उसे लगेगा कि खर्च बहुत अधिक हो रहा है और बस वह सतर्क हो जायगा।

इन दिनों शचीश एक भले लड़के की तरह नहाना-खाना किया करता था। इससे दामिनी की छाती धुक-धुक किया करती थी, और न जाने कैसी लज्जा का वह अनुभव करती रहती थी। शचीश अवज्ञा करता जैसे वह बच जाती। वह मन ही मन कहती, उस दिन जो तुमने मुझे दूर कर दिया था सो अच्छा ही किया था। मेरे प्रति यह जो तुम्हारी ममता है, उसे मैं जानती हूँ—तुम जैसे अपने आप को दंड दे रहे हो। भला मैं

इसे कैसे सह सकूँगी ? वह मन ही मन अपने नसीब को कोसती और कहती, लगता है मुझे यहाँ भी इनसे दूर रह कर पहले की तरह मुहल्ले की स्त्रियों से मेल-जोल बढ़ा कर बाहर ही बाहर घूमना पड़ेगा।

एक रात को अचानक ही पुकार आई, 'विश्री ! दामिनी !'

शचीश ने इसका ख्याल ही नहीं किया कि इस समय रात के एक या दो बजे हैं। मुझे तो यह ठीक से नहीं मालूम कि रात के समय शचीश कौन सा उत्पात रचा करता था लेकिन इतना तय था कि उससे इस मकान के भूत-प्रेत वगैरह के नाक में भी दम आ गया था।

हम दोनों हड़बड़ा कर जाग पड़े और बाहर निकल आये। देखा शचीश घर के सामने पक्के चबूतरे पर खड़ा है। अँधेरे में हमें देख कर वह बोला, 'मैंने अच्छी तरह समझ लिया है, अब मेरे मन में जरा भी सन्देह नहीं है।'

दामिनी धीरे-धीरे आकर चबूतरे पर बैठ गई। शचीश ने भी अन-मने भाव से उसका अनुसरण किया। मैं भी बैठ गया।

शचीश बोला, 'जिस दिशा की ओर मुँह करके वे मेरी ओर आ रहे हैं उसी दिशा की ओर मुँह किए अगर मैं चलता रहा तो मैं बराबर उनसे दूर होता जाऊँगा। उल्टी ओर मुँह करके चलने से ही तो उनसे मिल सकूँगा।'

मैं चुपचाप उसकी लाल-लाल आँखों की ओर देखता रहा। उसने जो कुछ कहा वह रेखा-गणित के हिसाब से तो सही है। लेकिन आखिर ऐसा कहने में उसका आशय क्या है, यह कुछ मैं समझ नहीं पाया।

वह कहता गया, 'वे रूप को प्यार करते हैं, इसीलिए तो निरन्तर रूप की ओर झुकते रहते हैं। हम लोग तो केवल रूप को लेकर नहीं जीते। इसीलिए तो हमारी दौड़ अरूप की ओर हुआ करती है। वे मुक्त

हैं, इसीलिए उनकी लीला बंधन में है, हम तो बँधे हुए हैं, इसीलिए हमारा आनन्द मुक्ति में है। इस बात को हम लोग नहीं समझते इसीलिए तरह-तरह के दुख भोगा करते हैं।

आसमान के तारे जिस प्रकार निस्तब्ध थे उसी तरह हम लोग भी निस्तब्ध बैठे रहे। शचीश कहता गया, 'दामिनी समझी नहीं? जो गीत गाया करता है वह आनन्द की ओर से रागिनी की ओर आया करता है, जो गीत सुनता है वह रागिनी की ओर से आनन्द की ओर जाया करता है। एक आता है बन्धन से मुक्ति की ओर और दूसरा जाता है मुक्ति से बन्धन की ओर। तभी दोनों पक्षों का वजन बराबर होता है। वे गा रहे हैं और हम सुन रहे हैं। वे अपने को बन्धन में बाँधते हुए सुनाते हैं और हम बन्धन बाँधते-बाँधते सुनते हैं।'

पता नहीं शचीश की बात दामिनी समझ भी सकी या नहीं लेकिन शचीश को उसने निश्चय ही समझ लिया। गोद में हाथ जोड़े वह चुपचाप बैठी रही।

शचीश बोला, 'अब तक मैं एक अँधेरे कोने में छिपे उस गायक का गाना सुन रहा था। सुनते-सुनते अचानक सब कुछ समझ में आ गया। इसलिए मैं अब अधिक नहीं रुक सका और मैंने तुम लोगों को बुला लिया। इतने दिनों तक मैंने उन्हें अपने ही साँचे में ढालने का प्रयत्न किया है और धोखा खाया है। लेकिन हे मेरे प्रलय! आज से मैं अपने आपको तुम्हारे ही भीतर चूर्ण-विचूर्ण करता रहूँगा।—हमेशा-हमेशा के लिए। मेरे कोई बन्धन नहीं है, इसलिए मैं किसी बन्धन को पकड़े नहीं रह सकता।—और चूँकि सारे बन्धन तुम्हारे ही पैदा किये हुए हैं इसलिए अनन्त काल में भी तुम सृष्टि के बन्धनों से मुक्त नहीं हो सकोगे। तुम मेरा रूप लेकर हो रहो मैं तो तुम्हारे अरूप में ही डुबकी लगाने चला हूँ। हे असीम तुम मेरे हो, तुम ही मेरे हो।' यह कहते-कहते शचीश अँधेरे में नदी की ओर चला गया।

४

उस रात के बाद से शचीश ने फिर से अपना वही पुराना ढंग पकड़ लिया। उसके नहाने-खाने का कोई ठिकाना नहीं रहा। कब उसके मन की तरंगें आलोक की ओर उठतीं और कब अंधकार की ओर झुक जाती, यह सब कुछ समझ में नहीं आता। ऐसे अजीब आदमी को एक भले लड़के की तरह खिलाने-पिलाने और स्वस्थ रखने का भार जिसने उठा रखा है, भगवान ही उसकी मदद करें।

उस दिन वातावरण दिन भर बड़ा गुमसुम बना रहा और रात में एक जोर का अंधड़ आया। हम तीनों तीन कमरों में सोते थे। सामने के बरामदे में मिट्टी के तेल की ढिबरी जलती थी, वह बुझ गई। नदी में उथल-पुथल मच गई। आकाश की छाती चीर कर मूसलाधार पानी बरसने लगा। नदी की काँपती हुई तरंगों और झमाझम बरसते हुए पानी ने जैसे प्रलय का समा बाँध दिया। घने होते हुए अँधेरे के पेट में क्या था यह तो मैं देख नहीं पा रहा था, लेकिन आकाश जैसे डर के मारे किसी अंधे लड़के की भाँति सिटपिटा रहा था। बाँसों के जंगल जैसे किसी विधवा प्रेतनी के रोने की चीखें उठ रही थीं। आम के बाग में डालों और पत्तों के बुरी तरह खड़खड़ाने की आवाज आ रही थी। बीच-बीच में दूर नदी-करारों के गिरने से बार-बार धमाके की आवाज होती थी और हमारे इस पुराने मकान की हड्डी-पसली झकझोरती हुई प्रचंड गति से हू-हू करती हुई किसी उन्मत्त जानवर की तरह दौड़ रही थी।

ऐसी रात में हमारे मन के खिड़की-दरवाजे भी अपने आप खुल जाते हैं और बाहर की आँधी जैसे भीतर घुस आती है। वह भीतर के असबाब को जैसे उलट-पुलट कर डालती और पर्दों को नोंच-नाच कर फाड़ डालती है। मुझे नींद नहीं आ रही थी। बिस्तर पर पड़ा-पड़ा मैं न जाने कहाँ-कहाँ

की बातें सोच रहा था। उन सब को लिखना बेकार है, और फिर इस प्रसंग में उनका मूल्य ही क्या है ?

इसी समय सहसा शचीश अपने कमरे के अन्धेरे में से बोल उठा, 'कौन है ?'

जवाब आया, 'दामिनी। तुम्हारी खिड़की खुली हुई है, कमरे में पानी का बौछार आ रही है—खिड़की बन्द कर दूँ।'

खिड़की बन्द करते-करते दामिनी ने देखा कि शचीश अचानक बिस्तर से उठ खड़ा हुआ है। क्षण भर के लिए जैसे उसके मन में दुविधा हुई और फिर वह तेजी से कमरे के बाहर निकल गया। बिजली कौंध उठी और एक दबी हुई सी घड़घड़ाहट आसमान में फैल गई।

दामिनी न मालूम कितनी देर तक अपने कमरे की चौखट पर बैठी रही, लेकिन लौट कर कोई नहीं आया। हवा के झोकों की अधीरता जैसे बराबर बढ़ती जा रही थी।

दामिनी अब और अधिक नहीं रुक सकी। वह बाहर निकल आई। हवा इतनी तेज थी कि बाहर खड़ा रह पाना भी मुश्किल था। ऐसा लगता था जैसे वह किसी प्रबल देवता के गण उसे खींचते-ढकेलते हुए आगे बढ़ाये जा रहे थे। विश्व का जड़ अंधकार आज जैसे आकाश की सारी संधियों को पूरने के लिए जान की बाजी लगाये हुआ था। अगर इसी तरह दामिनी भी आज रो-रोकर ब्रह्माण्ड को डुबा सकती तो उसके प्राण बच जाते।

अचानक बिजली कौंधी और उसकी तड़तड़ाहट ने अंधकार को एक कोने से दूसरे कोने तक फाड़ कर चिथड़े-चिथड़े कर दिया। उस क्षणिक आलोक में दामिनी ने देखा कि शचीश नदी किनारे स्तब्ध भाव से खड़ा है। दामिनी सारी शक्ति लगा कर दौड़ पड़ी और उसके पाँवों के पास जा पड़ी। हवा की चीख को अपनी आवाज से पराजित करती हुई

वह बोली, 'तुम्हारे पैर छूकर कहती हूँ मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया है। तब क्यों तुम इस तरह मुझे दंड दे रहे हो ?'

शचीश चुपचाप खड़ा रहा।

वह कहती गई, 'अगर तुम चाहो तो मुझे लात मार कर नदी में फेंक सकते हो, लेकिन तुम घर लौट जाओ।'

शचीश लौट आया। घर में आते ही बोला, 'मैं जिन्हें खोज रहा हूँ, मुझे आज उन्हीं की सबसे बड़ी जरूरत है—और किसी की मुझे जरूरत नहीं। दामिनी मुझ पर दया करो, मुझे अकेला छोड़ कर चली जाओ।'

दामिनी कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही, फिर बोली, 'ठीक है यही सही। मैं चली जाऊँगी।'

५

बाद में मैंने दामिनी से शुरू से अंत का सारा किस्सा सुना, क्योंकि उस दिन तो मैं इसके बारे में कुछ भी नहीं जान पाया था। इसीलिए मैंने उस दिन जब अपने बिस्तर से देखा कि ये दोनों अपने-अपने कमरों की ओर चले गये तो मुझे ऐसा लगा जैसे मेरा दुर्भाग्य मेरी साँस घोंटने लगा। मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा। उस रात फिर मुझे नींद नहीं आई।

दूसरे दिन सबेरे मैंने देखा कि दामिनी का चेहरा न मालूम कैसे लग रहा था। कल रात की आँधी के समूचे तांडव-नृत्य ने सारे संसार में सिर्फ इसी स्त्री पर अपना पूरा असर छोड़ा हो। इसका कुछ भी इतिहास न जानते हुए भी मुझे शचीश के ऊपर गुस्सा आने लगा।

दामिनी ने मुझसे कहा, 'श्रीविलास बाबू, चलो, तुम मुझे कलकत्ते तक पहुँचा दो।'

दामिनी के लिए शचीश का अकेला छोड़ सकना कितनी मुश्किल बात है यह मैं खूब अच्छी तरह से जानता हूँ, लेकिन मैंने उससे कुछ नहीं पूछा। कठिन पीड़ा के भीतर भी मैंने आराम-सा पाया है। यहाँ से दामिनी का चले आना ही अच्छा है। उसके लिए तो जैसे किसी अचल पहाड़ से टकरा-टकरा कर कोई नाव अपने अंजर-पंजर ढीले कर दे।

विदा के समय दामिनी शचीश को प्रणाम करती हुई बोली, 'मैंने अनेक अपराध किये हैं, माफ कर देना।'

शचीश धरती की ओर आँख गड़ाते हुए बोला, 'मैंने भी अनेक अपराध किये हैं, सब को धो-पोंछ कर ही क्षमा मागूँगा।'

दामिनी में प्रलय की आग-सी जल रही थी—कलकत्ते आते-आते मैं इसे खूब अच्छी तरह से समझ गया था। इसका ताप लगने से जब मेरा मन भी बहुत अधिक उत्तप्त हो उठा तो एक दिन मैंने भी शचीश को लक्ष्य करके कुछ कड़ी-कड़ी बातें कह दीं। लेकिन सुनते ही दामिनी ने कहा, 'देखो, उनके बारे में तुम मेरे सामने ऐसी बातें न कहा करो। उन्होंने मुझे किस तरह उबारा है यह तुम क्या जानो! तुम तो मेरी पीड़ा की ही ओर देखते हो, मुझे बचाने के लिए उन्होंने जो दारुण यातना पाई है, उस ओर क्या तुम्हारी नजर भी नहीं जाती है? सुन्दर के मारे जाने पर असुन्दर ने ही अपनी छाती पर आघात फल झेला है। बहुत अच्छा हुआ, ठीक हुआ, ठीक हुआ।' यह कह कर दामिनी अपनी छाती कूटने लगी। मैंने जोर से उसका हाथ दबा लिया।

हम दोनों शाम के समय कलकत्ते पहुँचे और उसी समय दामिनी को उसकी एक मौसी के यहाँ पहुँचा कर मैं अपने एक जाने-पहचाने ढाबे में जा टिका। जान-पहचान के लोग मुझे देख कर चौंक उठे, 'क्या तुम बीमार हो?'

दूसरे दिन पहली डाक से दामिनी की एक चिट्ठी मिली, 'आकर मुझे लिवा ले जाओ, यहाँ मेरे लिए जगह नहीं है।'

मौसी दामिनी को घर में रखने के लिए तैयार नहीं थीं। सुना, हम लोगों की बदनामी का ढिंढोरा सारे शहर में पिट गया है। जब हमने अपने दल को छोड़ा था तब उसके कुछ ही दिनों बाद साप्ताहिक पत्रों के 'दशहरा विशेषांक' जो निकले थे ! इसके लिए हमारा यूपकाष्ठ तो तैयार ही था, इसलिए रक्तपात में भी कोई कसर नहीं की गई। शास्त्र में स्त्री-पुरुष की बलि निषिद्ध है। लेकिन लोगों को सबसे अधिक आनन्द इसी में आता है। हालाँकि अखबारों में दामिनी का नाम साफ-साफ नहीं था लेकिन फिर भी इस चतुराई में कोई कमी नहीं की गई थी कि उसकी बदनामी में कोई कसर न रह जाय। इसका नतीजा यह हुआ कि दूर के रिश्ते की मौसी का मकान भी दामिनी के लिए बन्द हो गया।

इस बीच दामिनी के माता-पिता का देहान्त हो चुका था, लेकिन भाइयों में से कुछ अभी जीवित थे, यह मैं जानता था। मैंने जब दामिनी से उनका पता पूछा तो उसने सिर हिला दिया और बात यहीं खत्म कर दी कि वे लोग बहुत गरीब हैं।

असल में बात यह थी कि दामिनी उन्हें भी धर्म-संकट में डालना नहीं चाहती थी। फिर यह भी आशंका थी कि कहीं भाई लोग भी जवाब न दे दें। इस चोट को वह बरदाश्त नहीं कर सकती थी।

मैंने पूछा, 'तो फिर कहाँ जाओगी ?'

दामिनी शान्त भाव से बोली, 'लीलानन्द स्वामी के पास।'

लीलानन्द स्वामी ! कुछ देर तक तो मैं अवाक् उसकी ओर देखता ही रह गया। भाग्य की भला यह कैसी दारुण लीला है !

मैंने कहा, 'स्वामी जी तुम्हें स्वीकार भी करेंगे ?'

वह बोली, 'हाँ, बड़ी खुशी से।'

दामिनी आदमी को पहचानती है। जो लोग दलचर जाति के मनुष्य

हैं वे अपने दल को बढ़ाने के लिए आदमी को पा जायें तो सत्य को पाने की अपेक्षा कहीं अधिक सुखी होते हैं। लीलानन्द स्वामी के यहाँ दामिनी को जगह की कमी नहीं होगी, यह बात तो बिलकुल ठीक थी, लेकिन......

तभी मैंने इस संकट के समय एक बात कह दी, 'दामिनी, एक और भी रास्ता है, अगर अभय दो तो कहूँ।'

दामिनी बोली, 'कहो, सुनूँ भी तो भला।'

मैं बोला, 'मेरे जैसे आदमी के साथ तुम्हारे लिए विवाह करना सम्भव हो तो......'

मुझे रोक कर बोली, 'यह कैसी बात कह रहे हो, श्रीविलास बाबू? कहीं पागल तो नहीं हो गये?'

मैं बोला, 'थोड़ी देर के लिए मान ही लो कि मैं पागल हो गया हूँ। पागल होने से बहुत सी कठिन बातों का फैसला बड़ी आसानी से करने की क्षमता आ जाती है। पागलपन अरब की कहानियों का वह जादुई जूता है जिसमें पैर डालते ही दुनिया की हज़ारों बेकार बातों को अनायास ही पार किया जा सकता है।'

'बेकार? बेकार की बातें तुम किन्हें कहते हो?'

'यही जैसे लोग क्या कहेंगे, आगे चल कर क्या होगा, वगैरह, वगैरह।'

दामिनी बोली, 'ये तो हुई बेकार की बातें, और असली बातें कौन सी हैं?'

मैं बोला, 'यही जैसे मेरे साथ विवाह करने पर तुम्हारी क्या दशा होगी?'

'ओ, अगर असल बात यही है तो मैं निश्चिन्त हूँ। क्योंकि मेरी दशा इस समय जैसी है उससे ज्यादा खराब भविष्य में नहीं होगी।

आज तक अपने प्रति मेरे विचार के सम्बन्ध में दामिनी ने किसी प्रकार भी खबर या संकेत नहीं पाया, होगा इसमें मुझे विश्वास नहीं। लेकिन इतने दिनों तक उसके लिए इसका कोई महत्त्व नहीं था—कम से कम उसका जवाब देना तो उसके लिए निष्प्रोजन ही था। और इतने दिनों बाद आज जवाब का एक दावा पेश हुआ था।

दामिनी चुपचाप सोचने लगी। मैंने कहा, 'दामिनी, मैं संसार के बहुत ही साधारण लोगों में से हूँ। यहाँ तक कि शायद उससे भी कम मेरी स्थिति है। तुम मुझे बिलकुल ही तुच्छ समझ सकती हो। मेरे साथ विवाह करना और न करना दोनों में कोई खास फर्क नही है। इसलिए इसमें तुम्हारे लिए इतने सोचने-विचारने की तो कोई बात नहीं है।'

दामिनी की आँखें छलक आईं। वह बोली, 'तुम अगर सचमुच साधारण आदमी होते तो मैं कुछ भी नहीं सोचती!' इतना कह कर दामिनी फिर से सोच में पड़ गई।

कुछ देर बाद वह बोली, 'तुम तो मुझे जानते हो।'

मैंने कहा, 'तुम भी तो मुझे जानती हो, दामिनी!'

तो बातचीत इसी प्रकार शुरू हुई! जो बातें मुँह से कही न जा सकीं उनका असर और नतीजा ज्यादा अच्छा रहा।

पहले ही कह चुका हूँ कि एक दिन अपनी अँग्रेजी में भाषण देने की कला से मैंने अनेक लोगों का मन हर लिया था। आज इतने दिनों का व्यवधान हो जाने से उन लोगों में बहुतों का मेरे बारे में नशा टूट चुका है। लेकिन मेरे प्रशंसकों में से नरेन्द्र अब भी मुझे वर्तमान युग का एक अलौकिक व्यक्ति ही मानता था। उसके एक मकान में किरायेदार

के आने में अभी डेढ़ महीने की देरी थी। इसलिए फिलहाल हमने वहीं आश्रय लिया।

मेरे प्रस्ताव की गाड़ी जो पहले ही दिन पहिया तुड़ा कर मौन के गढ़े में गिरी तो ऐसा लगा जैसे वह हाँ और न के परे वहीं अटक कर रह जायगा। कम से कम ऐसा तो लगा ही कि उसे वहाँ से निकालने के लिए कुछ जोर लगाने की जरूरत होगी। लेकिन मन नाम की चीज की रचना ही इसलिए हुई है कि वह अपने विचित्र परिहास से मनोविज्ञान को हमेशा धोखा देता रहे। सो सृष्टिकर्ता के आनन्द का वह हास्य इस बार फागुन के महीने में किराये के इस मकान के घेरे में बार-बार सुनाई देने लगा।

दामिनी को कभी इतनी फुरसत नहीं मिली थी कि कभी वह इस ओर भी ध्यान दे कि मैं भी कुछ हूँ। शायद किसी अन्य दिशा से उसकी आँखों पर अधिक प्रकाश पड़ रहा था। लेकिन इस बार उसकी दुनिया सिकुड़ कर केवल उतनी ही जगह में सीमित हो गई कि जहाँ सिर्फ मैं ही अकेला था। इसीलिए आज उसके लिए मुझे भर नजर देखने के सिवा अब कोई चारा नहीं रह गया था। अपने को भाग्यवान ही कहूँगा कि दामिनी ने ठीक इसी समय ही जैसे पहली बार मुझे देखा।

मैं दामिनी के साथ न मालूम कितने नदी-पहाड़ और सागर के तटों पर घूमता फिरा हूँ। इसके अलावा मृदंग और करताल की आँधी तथा रस की तान मन में एक तरह की आग सुलगाती रही है। फिर भी हम दोनों के बीच जो पर्दा था वह अब तक नहीं जल सका था।

लेकिन कलकत्ते की इस गली में आकर यह क्या हो गया? हा आज हमारी नजर में ये एक-दूसरे से इतने पास-पास सटे हुए मकान मानों पारिजात के फूलों की तरह छिटक उठे। जरूर ही इसमें विधाता का कोई विशेष हाथ रहा होगा। साधारण ईंट-पत्थर को भी उन्होंने अपने महा

संगीत के सुर में ढाल दिया है। और मेरे जैसे अति साधारण मनुष्य को भी न मालूम किस पारस-मणि से छू दिया है कि मैं क्षण भर में ही साधारण हो उठा हूँ। दीवार जब तक बनी रहती है तब तक बीच का व्यवधान में जैसे अनन्त काल का व्यवधान बना रहता है। लेकिन जब वह टूट जाता है तो वह व्यवधान एक पल का भी नहीं रह पाता। इसलिए अब देर नहीं लगी। दामिनी बोली, 'मैं तो मानो किसी स्वप्न में डूबी थी, जागने के लिए जैसे सिर्फ इसी एक धक्के की जरूरत थी। मेरे उस समय के तुम और इस समय के तुम में सिर्फ एक तंद्रा का अन्तर है। अपने गुरु को मैं बार-बार प्रणाम करती हूँ कि उन्होंने मेरी यह तंद्रा तोड़ दी।'

मैंने कहा, 'दामिनी तुम इस तरह मेरे मुँह की ओर न देखो। विधाता की यह कृति देखने में बहुत सुन्दर नहीं है, यह तथ्य को जब तुमने पहले पहल ढूँढ़ निकाला था तब तो मैंने इस स्थिति को किसी तरह सहन कर लिया था, अब तो मेरे लिए मुश्किल हो जायगा।'

वह बोली, 'विधाता की यही कृति सुन्दर है, आज यही बात मुझे सच मालूम हो रही है।'

मैं बोला, 'तब तो इतिहास में तुम्हारा नाम अमर रहेगा। उत्तरी ध्रुव का आविष्कार करके वहाँ झंडा गाड़ आने वाले की कीर्ति भी इसके सामने तुच्छ है। यह दुःसाध्य साधन नहीं असाध्य साधन कहलायेगा।'

इसके पहले मैंने कभी यह नहीं सोचा था कि फागुन का महीना इतना छोटा होता है। सिर्फ इने-गिने तीस दिन—और वे भी चौबीस घंटों से एक मिनट भी ज्यादा नहीं। भला सोचिये तो! विधाता के हाथ में काल की सीमा नहीं है, अनन्त काल है उसके पास। फिर भी वे इतनी कंजूसी क्यों करते हैं, यह कुछ समझ में नहीं आया।

दामिनी बोली, 'अच्छा, तुम यह जो मेरे साथ विवाह की करने का पागलपन करने जा रहे हो, इसमें तुम्हारे घर के लोग—'

'वे मेरे हितचिन्तक हैं। इस बार वे लोग मुझे घर से बिल्कुल ही निकाल देंगे।'

'फिर इसके बाद ?'

'इसके बाद हम दोनों मिल कर नींव से शुरू करके माथे तक बिलकुल नये सिरे से अपना नया घर बसायेंगे—वह सिर्फ हम दोनों की ही सृष्टि होगी।'

दामिनी ने कहा, 'और उस घर की गृहिणी को भी तुम्हें नये सिरे से गढ़ना होगा। वह भी तुम्हारे ही हाथ की सृष्टि हो, उसमें पुराने जमाने का कुछ भी लक्षण शेष न रहे !'

आखिर चैत्र का महीना आया। दिन निश्चित करके विवाह की तैयारी की गई। दामिनी ने लाड़ के मान में हठ किया कि शचीश को भी बुलाना होगा।

मैंने पूछा, 'क्यों ?'

'वे ही तो कन्यादान करेंगे।'

वह पगला भला इस समय कहाँ घूम रहा होगा इसका पता किसे है ? चिट्ठियों पर चिट्ठियाँ डालीं, लेकिन उसका कोई जवाब नहीं आया। वह अब भी जरूर ही उस भुतहे मकान में रहता होगा वरना चिट्ठी लौट नहीं आती। लेकिन इस बात में पूरा सन्देह है कि वह कभी किसी की चिट्ठी खोल कर पढ़ता भी है या नहीं।

मैंने कहा, 'दामिनी, तुम्हें खुद जाकर उसे निमन्त्रण देना होगा। पत्र द्वारा निमन्त्रण देने की बात यहाँ नहीं चलेगी। मैं अकेला ही चला जाता लेकिन डरपोक आदमी ठहरा। बहुत संभव है कि इस समय शचीश नदी के उस पार चला गया हो और पशु-पक्षियों की संगत में मगन हो। वहाँ तक का जा सकना तुम्हें छोड़ कर और किसी से संभव नहीं है।'

दामिनी ने हँस कर कहा, 'मैंने प्रतिज्ञा की थी कि फिर कभी वहाँ लौट कर भी नहीं जाऊँगी।'

मैंने कहा, 'भोजन लेकर नहीं जाओगी, यही प्रतिज्ञा तो की थी, तो भला भोजन का निमन्त्रण लेकर जाने में कौन सा संकट है ?'

खैर, हम लोग वहाँ पहुँचे। और इस बार किसी तरह की दुर्घटना नहीं घटी। अन्त में हम दोनों शचीश के हाथ पकड़ कर उसे अपने साथ कलकत्ते खींच लाये। जैसे कोई खिलौना पाकर कोई बच्चा प्रसन्न हो उठता है उसी तरह हमारे विवाह की बात सुन कर शचीश प्रसन्न हो उठा। हमने तो सोचा था कि सारा काम चुपके से निपटा देंगे, लेकिन शचीश किसी भी तरह इसके लिए तैयार नहीं हुआ। खासतौर से जब ताऊजी के मुहल्ले के मुसलमानों को इसकी खबर मिली तो उन्होंने कुछ भी उठा नहीं रखा। उन्होंने तो ऐसी धूमधाम की कि आसपास के लोगों को लगा जैसे काबुल के अमीर के स्वागत किया जा रहा है—कम से कम लोगों ने हैदराबाद के निजाम तो हमें समझा ही होगा।

अखबारों में भी शोर मच गया। इस बार के दशहरे के विशेषांकों में हम दोनों की साथ-साथ बलि दी गई। इसके लिए हम किसी को शाप नहीं देंगे। माँ जगदम्बा संपादकों की थैलियाँ भरी-पूरी रखे और नर-रक्त पान के नशे में पाठकों को इस बार किसी प्रकार की बाधा न हो।

शचीश बोला, 'विश्री, तुम लोग मेरे ही मकान में रहो न।'

मैंने कहा, 'तो तुम भी हमारे साथ ही आ जाओ, हम फिर से पहले ही की तरह काम में लग जायँगे।'

शचीश बोला, 'नहीं, मेरा काम कहीं और है।

दामिनी बोली, 'हमारे बहू-भात का निमन्त्रण खाये बिना तुम नहीं जा सकोगे।'

इसलिए शचीश रुक गया। बहू-भात के निमन्त्रण में निमन्त्रित

अतिथियों की संख्या कुछ बहुत अधिक नहीं थी। कोई था तो अकेला शचीश ही।

शचीश ने कहने को कह तो दिया कि मेरे मकान का उपभोग कर सकते हो लेकिन हम जानते थे कि वह कैसा उपभोग होगा। हरिमोहन ने उस मकान पर कब्जा कर लिया था, और किसी किरायेदार को वहाँ टिका दिया था। हरिमोहन तो उसे अपने निजी काम में लाने की सोच रहे थे लेकिन उनके मित्रों ने इसकी राय उन्हें नहीं दी जो उनके परलोक की भी चिन्ता किया करते थे। कहा गया कि इस मकान में प्लेग से एक मुसलमान मर गया था। इसलिए जो इसमें आयेगा उसका भी यही हाल होगा। लेकिन इस बात को किरायेदार से छिपाकर रखा गया था।

हम लोगों ने किस प्रकार हरिमोहन के हाथ मकान का उद्धार किया इसकी भी एक लम्बी कहानी है। इस काम में मेरे प्रधान सहायक मुहल्ले के मुसलमान भाई लोग थे। कुछ अधिक नहीं करना पड़ा। बस ताऊजी का वसीयतनामा भर उन्हें एक बार दिखा देना पड़ा। इसके बाद मुझे वकीलों के घर की जरूरत नहीं पड़ी।

अब तक तो मैं घर से भी बराबर कुछ न कुछ मदद पाता आया था लेकिन अब वह भी बन्द हो गई। हम दोनों बिना किसी की सहायता के अपनी गृहस्थी चलाने लगे। तकलीफ होती थी उसमें ही हमें आनन्द मिलता था। मैं तो रायचन्द्र-प्रेमचन्द्र स्कालरशिप-प्राप्त युवक था, इसलिए मुझे प्रोफेसरी तो आसानी से मिल गई। इसके अलावा मैंने परीक्षा पास करने की कुछ पेटेंट दवाएँ भी खोज निकालीं—यानी किताबों की मोटी-मोटी कुंजियाँ भी लिख डालीं। हम लोगों की आवश्यकता तो थोड़ी सी ही थी। इसके लिए इतने प्रयत्न की आवश्यकता नहीं थी। लेकिन दामिनी ने कहा, 'यह भी हम लोगों की ही जिम्मेदारी है कि शचीश की भी कुछ व्यवस्था करते रहें ताकि उसे जीविका की कुछ चिन्ता न करनी पड़े।'

एक और भी बात थी जो दामिनी ने मुझे नहीं बताई थी—मैंने भी उससे नहीं पूछा, चुपचाप ही यह काम निपटाना था—दामिनी की दोनों भतीजियों को किन्हीं सत्पात्रों के साथ ब्याहना और उसके भतीजां को पढ़ा-लिखाकर आदमी बनाने में जो खर्च लगने की संभावना थी उसे दामिनी के भाई किसी भी हालत में उठा नहीं सकते थे। हालाँकि यह बात अलग थी कि वे लोग हमें अपने घर में घुसने नहीं देना चाहते थे। क्योंकि आर्थिक सहायता नाम की जो चीज होती है उससे जाति या कुल से सम्बन्ध नहीं होता खास तौर से ऐसे समय जब कि सहायता को ग्रहण करने की आवश्यकता हो, ऐसे समय में जाति और कुल की मर्यादा का नाम लेना बेकार समझा जाता है।

इसलिए मुझे अन्य काम के अलावा एक अँग्रेजी अखबार का सहायक सम्पादक भी होना पड़ा।

मैंने दामिनी को बिना बताये एक उड़िया ब्राह्मण, एक बैरे और एक नौकर का प्रबन्ध किया। दामिनी ने भी बिना मुझे बताये दूसरे दिन सबको विदा दिया। मेरे ऐतराज करने पर वह बोली, 'तुम लोग बराबर उलटी बात समझ कर ही दया दिखाया करते हो। तुम तो बाहर काम करके परेशान होओ और इधर मै घर का जरा सा काम भी नहीं कर सकूँ—तो फिर मेरी लाज को कौन बढ़ायेगा?'

घर के बाहर की दुनिया से मेरे और घर के भीतर की दुनिया से दामिनी के सम्बन्ध का गंगा-जमुनी स्रोत हमारे जीवन में आ मिला। इसके अलावा दामिनी ने मुहल्ले की छोटी-छोटी मुसलमान बच्चियों को सीने-पिरोने का काम सिखाना शुरू कर दिया। मुझसे वह किसी भी तरह से हार नहीं मान सकती, जैसे इसकी उसने प्रतिज्ञा कर रखी थी।

मुझमें इतनी काव्य शक्ति नही है कि अपनी इस उपलब्धि को ठीक स्वर से पेश कर सकूँ कि कलकत्ते का यह शहर ही वृन्दावन है और इसी तरह जी-जान से परिश्रम करना ही वंशी की तान है। लेकिन इतना तो

जरूर ही क॰ ंगा कि हमारे जो दिन बीते वे न तो धीरे बीते और न दौड़ कर ही े-गाते और नाचते-कूदते ही बीते !

इसी तर ...गुन और आया और चला गया। लेकिन उसके बाद का फागुन फिर नहीं कट सका।

लीलानन्द स्वामी के साथ यात्रा से आने के बाद से दामिनी की छाती में एक प्रकार का दर्द शुरू हो गया था। इसके बारे में उसने कभी किसी को बताया ही नहीं। जब पीड़ा बहुत बढ़ गई तो उसने सिर्फ इतना ही कहा, 'यह मेरा ऐश्वर्य है—यह मेरी पारसमणि है। इसे लेकर ही तो मैं तुम्हारे पास आ सकी हूँ, वरना मैं कभी क्या तुम्हारे योग्य हो सकती थी?'

अलग-अलग डाक्टरों ने बीमारी के अलग-अलग नाम बताये। किसी से किसी का नुस्खा नहीं मिल सका। अन्त में डाक्टरी ठाट-बाट और दवा के बिल के पुटपाक में संचित स्वर्ण को भस्म करके उन लोगों ने जैसे लंकाकांड की लीला समाप्त की और उत्तर कांड में यह घोषित कर दिया कि हवा बदलने की जरूरत है। और उस समय हवा के सिवा मेरे खाली खजाने में और कुछ बचा भी नहीं था।

दामिनी बोली, 'जहाँ से मैं इस पीड़ा को सहेज कर आई हूँ, मुझे उसी समुद्र के तीर ले चलो।—हवा का वहाँ कोई अभाव भी नहीं है।'

जिस दिन माघ की पूर्णिमा सौर फाल्गुन में पड़ी, उस दिन उमड़ते हुए खारे आँसुओं से भरपूर ज्वार की वेदना से समुद्र की छाती मानों फूल उठती थी।—दामिनी ने आखिरी बार मेरे पाँवों की धूल ली और कहा, 'मेरे मन की साध नहीं मिटी। आशीर्वाद दो कि अगले जन्म में मैं तुम्हें फिर से पा सकूँ!'